मीडिया-जगत की समस्याएँ : अस्स्योत्तर हिंदी कहानियों में

MEDIA-JAGATH KI SAMASYAYEM : ASSYOTTAR HINDI KAHANIYOM MEIN

कालिकट विश्वविद्यालय की
डॉक्टर ऑफ फिलोसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबंध

Thesis
Submitted to the University of Calicut
for the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI

निर्देशिका :
प्रो.(डॉ)मारग्रेट वी जी
प्रोफेसर (सेवानिवृत्त)
हिंदी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

प्रस्तुत कर्ता :
शाली पद्मावती पी
शोध छात्रा
हिंदी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

हिंदी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय
2023

Dr. MARGRET V G
Professor (Rtd.)
Department of Hindi
University of Calicut

CERTIFICATE

I, **SHALY PADMAVATHY P.**, do hereby declare that this thesis entitled **"MEDIA-JAGATH KI SAMASYAYEM : ASSYOTTAR HINDI KAHANIYOM MEIN"** is a record of bonafide research carried out by me and this has not previously formed the basis for the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship other similar Title or Recognition. This research work was supervised by **Dr. MARGRET V G.**, Professor (Rtd.), Department of Hindi, University of Calicut.

C.U. Campus
Date: 30.06.2023

Prof. (Dr.) MARGRET V G (Rtd.)
(Supervising Teacher)

Dr. Margret. V. G.
Professor (Rtd)
Department of Hindi
University of Calicut
Kerala - 673 635

DECLARATION

I, **SHALY PADMAVATHY P.**, do hereby declare that this thesis entitled **"MEDIA - JAGATH KI SAMASYAYEM : ASSYOTTAR HINDI KAHANIYOM MEIN"** is a record of bonafide research carried out by me and this has not previously formed the basis for the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship other similiar Title or Recognition. This research work was supervised by **Dr.MARGRET V. G.**, Professor (Rtd.), Department of Hindi, University of Calicut.

shalip

C.U. Campus
Date: 30.06.2023

SHALY PADMAVATHY P
Research Scholar
Department of Hindi
University of Calicut

अनुक्रमणिका

पृ.सं

प्राक्कथन

अध्याय : एक **1-45**
मीडिया परिदृश्य

1.1 अवधारणा

1.2 मिथकों में संचार के साधन

1.3 प्रारंभिक दौर

1.4 उत्पत्ति एवं परिचय

1.5 मीडिया : अर्थ, परिभाषा व प्रकार

1.5.1. परंपरागत जनसंचार माध्यम

1.5.1.1 लोकगीत

1.5.1.2 लोक गाथा

1.5.1.3 लोक कथा

1.5.1.4 लोक नृत्य

1.5.1.5 लोकनाट्य या जन-थियेटर

1.5.1.6 लोककला

1.5.2. मुद्रण माध्यम/प्रिंट मीडिया

1.5.3. फिल्म

1.5.4. श्रव्य-दृश्य संचार माध्यम

1.5.4.1. रेडियो

1.5.4.2. टी.वी.

1.5.5. डिजिटल या नवीनतम इलेक्ट्रॉनिक मीडिया

(मल्टी मीडिया, सी.डी. रॉम तथा इंटरनेट

जैसे उच्च तकनीकी माध्यम)

1.6 वर्तमान परिदृश्य में मीडिया।

1.7 मीडिया के बदलते आयाम।

1.8 निष्कर्ष

अध्याय : दो **46-81**

अस्स्योत्तर हिंदी कहानी की यात्रा

2.1 अवधारणा

2.2 उत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा

2.3 हिंदी कहानी का प्रारंभ

2.4 प्रेमचंद और उनका समय

2.5 प्रेमचंदोत्तर हिंदी कहानी

2.6 कहानी आंदोलन

2.6.1. नई कहानी

2.6.2. साठोत्तरी कहानी आंदोलन (अकहानी आंदोलन)

2.6.3. अन्य कहानी आंदोलन

2.6.3.1 सचेतन कहानी आंदोलन

2.6.3.2 सहज कहानी आंदोलन

2.6.3.3 समांतर कहानी आंदोलन

2.6.3.4 सक्रिय कहानी आंदोलन

2.6.3.5 जनवादी कहानी

2.7 समकालीन कहानी

2.7.1 समकालीन हिंदी कहानी : प्रवृत्तियाँ

2.7.1.1 स्त्री विमर्श

2.7.1.2 दलित विमर्श

2.7.1.3 आदिवासी विमर्श

2.7.1.4 पारिस्थितिक विमर्श

2.7.1.5 भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद

2.7.1.6 सांप्रदायिकता

2.7.1.7 आतंकवाद

2.8 निष्कर्ष

अध्याय : तीन **82-117**

हिंदी साहित्य और मीडिया

3.1 अवधारणा

3.2 साहित्य की पहली अभिव्यक्ति : लोकनाट्य

3.3 पत्रकारिता और साहित्य की यात्रा

3.4 इलेक्ट्रोनिक मीडिया एवं साहित्य

3.4.1 रेडियो व साहित्य प्रसारण

3.4.2 दूरदर्शन और साहित्य

3.4.3 डिजिटल माध्यम : इन्टरनेट और साहित्य

3.5 साहित्य एवं चित्रपट

3.6 साहित्य के नए परिवेश में मीडिया

3.6.1 कविता में मीडिया

3.6.2 कथा साहित्य में मीडिया

3.6.3 कहानी में मीडिया

3.6.4 फिल्म में मीडिया

3.7 मीडिया और भाषा

3.8 निष्कर्ष

अध्याय : चार **118-172**

अस्स्योत्तर कहानियों में अभिव्यक्त मीडिया की समस्याएँ

4.1 अवधारणा

4.2 मीडिया जगत की समस्याएँ

4.2.1. मीडिया कर्मी और प्रेशर

4.2.1.1. टीआरपी की प्रेशर

4.2.1.2. नौकरी पर टिकने की प्रेशर

4.2.2. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अपनी पहचान की तलाश

4.2.3. पारिवारिक संकट

4.2.4. मीडिया कर्मी का आदर्श व यथार्थ

4.2.5. टीआरपी के दुष्चक्र में फँसा मीडियाकर्मी

4.2.6. मीडिया के बीच की प्रतियोगिता

4.2.7. सनसनीखेज

4.2.8. मीडिया में स्त्री

4.2.9. लाइव के लफड़े

4.2.10. संवेदनहीन मीडिया धर्म

4.2.11. राजनीति व मीडिया

4.2.12. प्रतिबद्धता नष्ट मीडिया कर्मी

4.2.13. प्रतिक्रिया

4.2.14. मज़बूर मीडिया कर्मी

4.2.15. कॉर्पोरेट या बॉस की खुशी

4.2.16. आपसी होड़

4.2.17 गैर महत्त्वपूर्ण घटना को ख़बर बनना

4.2.18 अन्य समस्यायें

4.2.18.1 साहित्य के प्रति मीडिया

4.2.18.2 खबरों की प्रस्तुति

4.2.18.3 धमकियों का सामना

4.2.18.4 मीडिया की नई नैतिकता

4.2.18.5 स्टिंग ऑपरेशन

4.2.18.6 अंधविश्वास फैलाने में मीडियाकर्मी

4.2.18.7 न्यूज़ की अदला बदली

4.2.18.8 न्यूज़ दिखाने से पहले

4.2.19 निष्कर्ष

अध्याय : पांच **173-174**

संस्तुतियां

उपसंहार **175-184**

संदर्भ ग्रन्थ सूची **185-192**

प्राक्कथन

प्राक्कथन

आज मीडिया आकर्षक एवं सशक्त माध्यम के रूप में उभर आ रहा है। देश के साठ-सत्तर प्रतिशत साक्षर, निरक्षर नागरिकों की चेतना पर लगातार दस्तक देने वाले व उन्हें शिक्षित, जागरूक और आधुनिक दुनिया से जोड़कर रखने में मीडिया का महत्त्वपूर्ण स्थाना रहा है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विस्फोटक प्रसार ने जन जीवन को गहराई तक प्रभावित किया है। वैसे तो, साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है इसलिए जन-जीवन में आए व्यापक परिवर्तनों ने साहित्य की दिशा और दशा बदल डाली है। यद्यपि मीडिया का उद्देश्य मनोरंजन, सन्देश व प्रचार रहा था लेकिन अब वह मनोरंजन और प्रचार तक सीमित होता जा रहा है। मानव को मीडिया के प्रति हो रही अधिक रुचि ने उसके प्रसारण को बदलने लगा।

तकनीकी के विकास ने मीडियाकर्मियों के लिए त्वरित सूचना संकलन व जनमानस तक पहुंचाने की विस्तृत मार्ग खोल दी है। इससे मीडिया कर्मी पर अधिक प्रेशर आने लगा है। मीडिया कर्मियों की इन्हीं समस्याओं की प्रस्तुति साहित्य में भी ख़ास तौर से कविता, नाटक उपन्यास, कहानी आदि में देखी जा सकती है। अस्स्योत्तर समय से लेकर ऐसी कई कहानियां लिखी गयी हैं जो मीडिया जगत की समस्याओं को उजागर करती आयी है। दूसरी ओर, जहां एकमात्र चैनल दूरदर्शन पर रात के वक्त समाचारों का प्रसारण करता था, वहीं आज दिन-रात दर्जनों खबरिया चैनलों से समाचारों का प्रसारण हो रहा है। इससे स्पष्ट है कि मीडिया जगत में चुनौतियां व प्रतियोगिताएं बढ़ रही है। यह

मीडियाकर्मियों पर कैसे असर कर रहे हैं इसे समझाने का प्रयास इस शोध द्वारा हो रहा है।

इस शोध प्रबन्ध का शीर्षक है 'मीडिया-जगत की समस्याएँ : अस्स्योत्तर हिंदी कहानियों में'। अध्ययन की सुविधा केलिए इसे चार अध्यायों मे बॉटा गया है।

पहला अध्याय है - 'मीडिया परिदृश्य'। इसमें मीडिया का अर्थ, परिभाषा, प्रकार आदि की चर्चा करते हुए मीडिया के संक्षिप्त इतिहास का परिचय दिया है।

दूसरा अध्याय है - 'अस्स्योत्तर हिंदी कहानी की यात्रा'। इसमें अस्स्योत्तर हिंदी कहानी की संक्षिप्त विकास गाथा को प्रस्तुत किया है।

तीसरा अध्याय है - 'हिंदी साहित्य और मीडिया', जिसमें हिंदी साहित्य लेखन में मीडिया की भूमिका का अध्ययन किया गया है।

चौथा अध्याय है - 'अस्स्योत्तर हिंदी कहानी में अभिव्यक्त मीडिया जगत की समस्याएँ'। प्रस्तुत अध्याय में अस्स्योत्तर समय की हिंदी कहानी में चित्रित मीडिया जगत की समस्याओं को चित्रित किया है। पांचवां अध्याय है - संस्तुति। जिसमें भविष्य की शोध संभावनाओं के बारे में चर्चा की है। अंत में प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष को 'उपसंहार' के रूप में प्रस्तुत किया है। जिसमें सभी अध्यायों से प्राप्त मुख्य बिन्दुओं को उजागर किया है। उपसंहार के बाद सहायक ग्रन्थ सूची को भी प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध कालिकट विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर रही डॉ.मारग्रेट वी जी के निर्देशन में संपन्न हुआ है। उनके बहुमूल्य सलाहों एवं सुझावों से ही यह अध्ययन पूर्ण हो पाया है। उनके प्रति मैं सदैव आभारी रहूँगी।

कालिकट विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो.(डॉ.)प्रमोद कोवप्रत्त जी के प्रति भी मैं विशेष आभारी हूँ जिनका पूर्ण सहयोग पूरे शोध में मुझे मिला है। साथ ही विभाग के अन्य सभी गुरुजनों को भी मैं इस अवसर पर आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने समय समय पर प्रोत्साहन देते हुए इस शोध कार्य की पूर्ति में मेरी सहायता की है। पुस्तकालय व दफ़्तर के कर्मचारियों और विभाग के मेरे मित्रों के स्नेह और सहयोग के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

परिवारवालों के सहयोग के बिना व्यक्ति के जीवन के किसी भी कार्य का शुभांत नहीं हो सकता। मेरी माताजी (के.आर.मालती) और पिताजी (एस.एस.पालकन) के प्रति मैं सदैव आभारी हूँ जिनके आशीर्वाद के बिना यह शोध कार्य संभव नहीं हो पाता। अपनी बड़ी बहन लाली पद्मावती की प्रेरणा और प्रोत्साहन ने हमेशा मेरी हौसला बढ़ाई है। उनके प्रति भी मैं आभारी हूँ। अपने पति डॉ.सुमेष.एस के प्रति मैं विशेष आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा, स्नेह एवं सहयोग के बिना यह कार्य संपन्न नहीं हो पाता। मेरे अन्य मित्रों के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिनके बहुमूल्य सुझावों से मुझे प्रेरणा प्राप्त हुई है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध की कमियों एवं सीमाओं के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। मीडिया और मीडिया साहित्य के प्रति रुचि रखनेवाले अध्येताओं और अनुसंधाताओं को प्रस्तुत शोध प्रबन्ध से फायदा मिलेगा तो मैं अपने आपको धन्य मानूँगी। इस आशा के साथ मेरा यह शोध प्रबन्ध सादर समर्पित है।

सधन्यवाद और सविनय

शाली पद्मावती पी

हिंदी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

अध्याय : एक

मीडिया परिदृश्य

1.1 अवधारणा

'संचार' की कहानी उतनी ही पुरानी है, जितनी कि मानव जीवन की। अपनी बात दूसरों तक पहूँचाने की ललक हमेशा मनुष्य में रही है। सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य ने अपने इर्द-गिर्द व्याप्त परिवेश की जानकारी प्राप्त करने का कौतूहल हमेशा रखा है। वह ऐसी संप्रेषण-व्यवस्था की तलाश में रहा जो न केवल जानकारी प्रदान करने का माध्यम बने बल्कि व्याक्ति-व्यक्ति के बीच विचारों और भावनाओं का आदान-प्रदान कर सके। एक से दूसरे को, दूसरे से तीसरे तक इस प्रकार दस लोगों के मुँह से प्रवाहित होकर सूचनाओं का प्रचार-प्रसार की प्रक्रिया ही 'संचार' है।

हर युग में जनसंचार के अपने कुछ माध्यम रहे हैं। हमारे पूर्वज संकेतों और प्रतीकों के द्वारा संवाद करता था। कालान्तर में भावों और विचारों को प्रकट करने 'शब्द' माध्यम के रूप में आया। देखा जाए तो, मनुष्य के जन्म के साथ ही संचार का आरंभ होता है। अभी जन्मे शिशु रोते हुए अपने इर्द-गिर्द के वातावरण के साथ संपर्क स्थापित करता है। यही संचार का पहला कदम है।

1.2 मिथकों में संचार के साधन

'मीडिया' या 'जनसंचार' शब्द भले ही नये हो, किन्तु भारत में जनसंचार की अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय पौराणिक साहित्य में इसके ढेरों उदारहरण मिलते हैं। पुराणों में नारदमुनि संत वीणा बजाते संवाददाता की तरह एक जगह से दूसरी जगह तीनों लोकों में संचार कर मौखिक रूप में संदेश को पहुँचाता था। रामायण काल की ओर देखे तो नगर का भ्रमण कर संदेश लाते सेवक, अशोकवाटिका में सीता से

मिलकर उसकी वेदना को व्यक्त करता हनुमान, सीता के फेंके आभूषणों के आधार पर उसका अपहरण करनेवाले रावण को ढूँढने की प्रवीणता, परिवहन के लिए इस्तेमाल किए पुष्पक विमान, वानर सेना का लंका तक समुद्र के ऊपर संपर्क सेतु का निर्माण करना ये सभी घटनाएँ संचार के अनेक पहलुओं को सामने लाती हैं।

एक नवजात शिशु को ही देख लीजिए, वह जन्म लेते ही संचार का कार्य करने लगता है। यानि कि वह रोकर अपना पहला संवाद स्थापित करता है। जब-जब उसे भूख लगता या किसी तरह की परेशानी होती है तो वह रोने लगता है, जिसे माता तुरंत समझ जाती है कि बच्चे को भूख लगी है या किसी अन्य तरह की कोई परेशानी हुई है। आदिकाल में जब भाषा और लिपि का विकास नहीं हुआ था, उस समय मनुष्य चित्रों, प्रतीकों, इशारों तथा विभिन्न प्रकार की आवाज़ें निकाल कर अपनी बातों को संप्रेषित करते थे। मनुष्य ही नहीं पृथ्वी पर विचरने वाले प्रत्येक जीव-जन्तु संचार का कार्य करते हैं। संचार के लिए वाणी, लिपि या भाषा अनिवार्य नहीं होता है, इशारे से भी संचार की अभिव्यक्ति की जाती है। जिस तरह प्रत्येक प्राणी के लिए भोजन, हवा, पानी, निद्रा, मैथुन आवश्यक है उसी प्रकार आज 'संचार' जीवन का अविभाज्य हिस्सा बन गया है। मूक-बधिर लोगों को ही लीजिए, वे सांकेतिक भाषा से अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं।

महाभारत में संभवतः दूरदर्शन जैसे ही एक माध्यम से संजय, कौरव के नेत्रहीन पिता धृतराष्ट्र को युद्ध के 'लाइव टेलीकास्ट' का वर्णन सुनाते हैं। संजय जो विवरण धृतराष्ट्र को सुनाते थे वह इतना स्पष्ट होता था कि महाराज उसे सुनकर ऐसा महसूस

करते थे मानो अपनी आँखों से सब कुछ देख रहे हैं। वैसे ही, पौराणिक साहित्य में आकाशवाणी की भी अनेक घटनाएँ मिलती हैं। कंस को देवकी पुत्र द्वारा अपनी हत्या की संभावना का समाचार आकाशवाणी से ही मिलता है। ये घटनाएँ पौराणिक साहित्य में आधुनिक संचार माध्यमों की उपस्थिति का संकेत हमें देती हैं। प्राचीन भारत की ओर आते वक्त मेला, सभा, तीर्थाटन, लोकनाट्य, नृत्य, लोकगीत आदि के रूप में जनसंचार माध्यम उपस्थित थे, आधुनिक काल तक आते-आते पत्र-पत्रिकाओं के साथ नवीन प्रकार के जनसंचार का प्रचलन शुरु हुआ जो रेडियो, फिल्म, टेलीविजन से होकर आज के द्रुतगामी इन्टरनेट सेवा तक आ पहुँचा है।

1.3 प्रारंभिक दौर

भारत की जनसंचार-व्यवस्था काफी प्राचीन है। शिलायुग में संचार के अनेक साधनों का आविष्कार हुआ। इस युग में सभ्यता की पहली कदम दिखाई देती है। भाषा न होने की स्थिति में चिल्लाने के माध्यम से संचार का काम किया जाता था। धीरे-धीरे सांस्कृतिक प्रगति गोचर होने लगी। संघजीवन अथवा ग्रामजीवन यहीं से प्रारंभ होता है। इसी वेला में 'वाणी' ने 'भाषा' का स्वरूप लिया। चित्रलिपि तथा अन्य मुद्राएँ उस समय के संचार की विशिष्टताएँ कहलाती है।

पुराणों के बाद अगर इतिहास को देखा जाए तो भारत में संचार के विविध सोपान दिखाई देता है। हमारे देश में मौर्यकाल से संदेश भेजने घुड़सवारों का व्यापक उपयोग होता रहा। सम्राट अशोक के समय उन्होंने अनेक शिलालेख, शिलालिपि, स्तंभलिपि, लघु स्तंभलिपि, अरेबिक और ग्रीक शासनों को लिखवाया है। वे प्रजा केलिए अनेक तरह की

सूचना, विचार, ज्ञान आदि के प्रसार की दृष्टि से लिखित रूप का संचार किया था। उसमें ब्राह्मीलिपि, पाली, प्राकृत, अरेबिक, ग्रीक आदि स्थानीय भाषाओं में ही शासनों को खुदवाया था। अब तक अशोक के युग की राजाज्ञाओं के 154 शासन मिले हैं।

ई.पू. 350-270 की अवधी में रचित कौटिल्य के अर्थशास्त्र में संचार कला का विस्तृत चित्र मिलता है। कौटिल्य के मार्गदर्शन में चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपनी शासन-व्यवस्था में एक सूचना विभाग का गठन किया था। इस सूचना विभाग का एक अनुभाग गुप्तचरों का होता था।

मुगल सम्राट औरंगजेब ने अपने समय में संचार व्यवस्था को विशेष महत्त्व दिया। औरंगजेब यह बात अच्छी तरह जानता था कि राजनीति को सुचारू रूप से चलाने के लिए संचार व्यवस्था को मजबूत होना अत्यंत आवश्यक है। जनता की समस्याऐं व प्रतिक्रियाऐं शासक तक और शासक के निर्णयों को जनता तक पहुँचाने में सूचना केन्द्रों का होना ज़रूरी है। इसलिए उन्होंने अपने राज्य में अनेकों सूचना-केन्द्रों की स्थापना की ताकि, उससे वह अपने साम्राज्य में होने वाली घटनाओं, गतिविधियों को अतिशीघ्रता से जान सकें। शेरशाह सूरी ने भी संचार व्यवस्था को मजबूत बनाने के उद्देश्य से ही ग्रैण्ड ट्रंक रोड का निर्माण कराया था। उन्होंने घुड़सवारों के रूप में कुशल संदेशवाहकों की नियुक्ति भी की थी। वे कुछ ही घंटों में सूचनाओं को एक छोर से दूसरे छोर तक पहूँचाते थे। आज वही कार्य कम्प्यूटर, टी.वी., रेडियो तथा समाचार-पत्रों द्वारा किया जा रहा है जो, सालों पूर्व शेरशाह शूरी के कुशल सन्देशवाहक घुड़सवार किया करता था। इस तरह 'संचार' की प्रक्रिया शुरू होती है।

1.4 उत्पत्ति एवं परिचय

'मीडिया' शब्द अंग्रेजी के 'मीडियम' शब्द से बना है। मीडियम शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'माध्यम'। कई लोग 'मीडिया' और 'मीडियम' शब्दों का एक ही अर्थ निकालते हैं। असल में 'मीडियम' का अर्थ है 'साधन' जबकि 'मीडिया' शब्द एकवचन में प्रयुक्त होता है और इसके अर्थ बहुआयामी है अर्थात् मीडिया का संबंध मुख्य रूप से प्रिंट, प्रसारण, सामान्य संचार, कंप्यूटर संचार यहाँ तक कि लोक-माध्यम इत्यादि से है जो मीडिया के अभिन्न अंग हैं। उस दृष्टि से देखा जाए तो मीडिया हमारे राष्ट्रीय, सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है। पिछले कुछ दशकों में हुए तकनीकी विकास के कारण सूचना-क्रांति ने मीडिया के स्वरूप को न केवल बहुआयामी बनाया है बल्कि उसे पूर्ण रूप से बदल दिया है। एक ओर रेडियो और टेलिविज़न के साथ समाचार-पत्रों के ज़रिए समाचारों के संप्रेषण की व्यवस्था ने नए-नए रूप ले लिए हैं, दूसरी ओर कंप्यूटर के माध्यम से इंटरनेट, वेब, ट्विटर, फेसबुक आदि ने मीडिया को नई गति और प्रतिक्रिया की स्वतंत्रता उपलब्ध कराई है।

जनमानस को प्रभावित करने की मीडिया की क्षमता असाधारण है। व्यक्ति से लेकर समाज तक और समाज से लेकर राष्ट्र तक की हर गतिविधि को मीडिया अपने प्रभाव में लेती है। इस मूल धारणा को ध्यान में रखते हुए, मीडिया को हमेशा अपना आत्म निरीक्षण करना है, जिससे मीडिया भारतीय संविधान द्वारा दिए गए अधिकार का

सही अर्थों में प्रयोग करे और लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में अपनी सार्थकता बनाए रखे।

मीडिया सामाजिक परिवर्तन का सक्षम साधन माना गया है, जो देश के आम आदमी की मानसिक और वैचारिक बुनावट और बनावट को मिनटों में बदल सकता है। आज दिशा-निर्देशों के अभाव में मीडिया, जन-विरोधी और प्रगति-विरोधी विकास के रूप में हमारे सामने खड़े हैं। फिर भी मीडिया अपनी इस छवि को बदलने के कठिन प्रयास में है। दरअसल मीडिया के लोक-कल्याणकारी चेहरा वर्तमान समय की माँग बन गयी है। आज मीडिया; जन-जन के बीच मधुर संबंध बनाने में, मार्गदर्शन करने में तथा देश की मुख्यधारा से लोगों को जोड़ने में उपयोगी सिद्ध हुऐ हैं। साथ ही साथ वह ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले हो या शहरी क्षेत्र में, सभी को समान रूप से सूचना देने में भी सक्षम है।

लोक-कल्याणकारी मीडिया की विशेषता यही है कि वह केवल अच्छे कार्यों के लिए लोकों को प्रेरित करें जिससे अपेक्षित जनमत का निर्माण हो, उनकी चेतना जागृत हो, कार्य और समाज के प्रति रुचि उत्पन्न हो और वे अपेक्षित लक्ष्य प्राप्त कर सकें। इन सब बातों के पीछे एक ही भावना निहित होती है, वह जनकल्याण है। लेकिन वर्तमान समय में मीडिया की भावना मात्र जनकल्याण है? यह सोचने की बात है।

विश्वसनीय मीडिया को ही आमजनता चाहती हैं। सत्य के उद्घाटन में मीडिया कितना ईमानदार होती है और समाचारों को सही परिप्रेक्ष्य में जन-सामन्य के सामने रखती है या नहीं इन तथ्यों पर आधारित होगा मीडिया की प्रतिष्ठा। वस्तुतः सामाजिक

सरोकार रखनेवाले मीडिया में सनसनी नहीं; संपादन की गंभीरता होनी है, लोगों में विश्वास जगाने की चाहत होनी है; न कि अन्धविश्वास, जो भी हो ये सब वर्तमान संदर्भ में कहाँ तक सार्थक है यह चिन्तनीय है।

महात्मा गांधी का मानना था कि मीडिया को आम जनता की भावनओं को समझना चाहिए और उनकी अभिव्यक्ति करनी चाहिए। उससे आम जनता में वांछित भावनाओं को जागृत कर सकता है, जैसे कि प्रेम, मित्रता, स्वयंसेवा, सामाजिक सेवा आदि। ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने 'प्रेस' को 'जन संसद' माना है। पंडित नेहरू ने तो प्रेस की स्वतंत्रता को केवल नारा न मानकर उसे लोकतंत्र की एक आवश्यक कड़ी माने हैं। लेनिन का कहना था कि प्रेस संयुक्त संघर्षशक्ति है, प्रचारक है, जनता की आवाज़ है और राजनैतिक आयोजक है। अतः मीडिया की यही जिम्मेदारी है कि वह सत्य का पालन एवं सम्मान करें और आम जनता में सत्य के प्रति निष्ठा पैदा करें। देखा जाए तो मीडिया सूचना दे भी रहे हैं और एहम वक्त पर दबा भी रहे हैं। असल में मीडिया को जनहित में अपनी शक्ति का उपयोग करना चाहिए न कि दुरुपयोग। अर्थात् मीडिया को सत्य और तथ्यों से दिलचस्पी रखनी चाहिए। मीडिया के बयानों में व्यक्तिगत विचारों का समावेश नहीं आना चाहिए। इसका ध्यान मीडिया-कर्मी को रखना है।

जनसमर्थन से ही मीडिया को इतनी बड़ी सम्मति मिली है। जनसमर्थन के लिए जनमानस की पहचान अति आवश्यक है। समाचारों और सूचनाओं का सम्यक विश्लेषण करके मीडिया को स्वयं निर्णय लेने केलिए आमजनता को प्रोत्साहित करना है। मीडिया को पक्ष-विपक्ष दोनों पर अपने विचारों को जन सामान्य के सम्मुख लाना चाहिए, ताकि

पाठक, श्रोता या दर्शक गुण-दोष का आकलन स्वयं करके उचित निर्णय ले सकें। एक प्रकार से देखा जाए तो, मीडिया समाज का सजग प्रहरी है। मीडिया को उन सभी पहलुओं की चिंता है, जो सामान्य जन-जीवन को प्रभावित करते हैं क्योंकि मीडिया समस्याओं का हल नहीं, वह तो अभिव्यक्ति का, मानव-मूल्यों के संरक्षण का माध्यम है। लेकिन आज-कल कहीं न कहीं मीडिया में परिवर्तन आ रहा है। वह समाचारों के नाम पर प्रेस की पवित्रता नष्ट कर रहा है। यहाँ तक कि टेलिविज़न चैनलों के रिपोर्टर तथा अल्पज्ञानी एंकर ऐसी खबर ढूँढ कर संपादकीय टेक देने में लगे हैं कि बड़े-बड़े संपादक भी अचंभित रह जाते हैं। 'ब्रेकिंग न्यूज़ों' ने तो सारी हदें पार कर दी। एक-दूसरे के आगे निकलने की चैनलों की होड़ ने आज खबरों का गला घोट दिया है। चैनलों केलिए बस टी.आर.पी. रेटिंग ही सबसे ज्यादा मैने रखते हैं। टी.आर.पी. की अंधी दौड़ में कम महत्त्व वाले या सनसनी फैलाने वाले कार्यक्रमों ने विचार शून्यता की स्थिति पैदा कर दी है। यह एक संक्रामक रोग की तरह सारे मीडिया माध्यम में फैल गया है।

कभी भी मीडिया के महत्त्व को कम करके आँक नहीं सकते हैं, बस उन्हें जब तक सही दिशा नहीं मिल जाता तब तक वह बे लगाम घोड़े की तरह चलता रहेगा। अतः इलेक्ट्रॉनिक मीडिया हो या प्रिंट मीडिया दोनों के संपादक डेस्क की भूमिका को पुनः परिभाषित करने की ज़रूरत है।

1.5 मीडिया : अर्थ, परिभाषा व प्रकार

'मीडिया' शब्द हिंदी भाषाई समुदाय में जनसंचार माध्यमों केलिए रूढ़ हो गया है। अर्थात् जनसंचार माध्यमों को संकेतित करने के लिए बहुआयामी संदर्भों में प्रयुक्त हो

रहे शब्द है आज 'मीडिया'। इन दिनों मीडिया का कार्यक्षेत्र व्यापक हो रहा है। लोकतंत्र में शासन अपनी नीतियों, अपने कार्यक्रमों, कानूनों, आदेशों और निर्देशों को जनता तक पहुँचाने केलिए मीडिया का सहारा ले रहा है। दूसरी ओर जनता भी अपने जीवन से जुड़ी बातों, अपनी भावनाओं और अपनी अपेक्षाओं को शासन तक पहुँचाने केलिए मीडिया का सहारा लेता है। इस तरह जीवन और जगत की यथार्थता को मीडिया जितनी सक्षमता से अभिव्यक्त करती है, वैसे दूसरे माध्यमों से असंभव है। मानव जीवन व संबंधों पर गहरा प्रभाव छोड़ने वाली मीडिया, समाज में अपनी अलग एवं अहम भूमिका निभाती आयी है। इसलिए मानव जीवन में इसे 'पंचम वेद' और लोक तांत्रिक जीवन में इसे 'चौथा स्तंभ' जैसी विशेष संज्ञा दी है।

आज हर विद्वान संचार पर अपनी-अपनी परिभाषा देता है। एक कहता है यह शिल्प है; दूसरा कहता है यह कला है; तीसरा कहता है यह विज्ञान है, चौथा कहता है इसका संबंध मनोविज्ञान से है। सबका मतलब एक ही है, किंतु कोई सर्वसम्मत धारणा नहीं बना पाया। इसकी महत्ता को स्वीकार करते हुए अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग ढंग से इसे परिभाषित करने की कोशिश की है। ऑक्सफर्ड डिक्शनरी में संचार की परिभाषा एक विचार को दूसरे तक स्थानंतरित करने की अवधारणा के रूप माना है। परिभाषा इस प्रकार है कि "The imparting, conveying or exchange of idea, knowledge etc, whether by speech, writing or signs."[1] (विचारों, जानकारी वगैरह का विनिमय, किसी और तक पहुंचाना या बांटना, चाहे वह लिखित, मौखिक या

[1] जनसंचार सिद्धान्त और अनुप्रयोग, विष्णु राजगढ़िया, पृ.सं. 22

सांकेतिक हो।) डेनिल मैकबेल के अनुरूप ''एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक अर्थपूर्ण संदेशों के सम्प्रेषण ही संचार है।''[2]

According to Columbia Encyclopedia ''The transfer of thoughts and messages as contrasted with transportation, the transfer of goods and persons. The broad forms of communication are by signs (sight) and sound (hearing)''[3]. (विचारों और संदेश का स्थानांतरण, जो व्यक्तियों या वस्तुओं के स्थानांतरण से सर्वथा विपरीत है। संचार के प्रमुख रूप संकेत और ध्वनियां हैं।)

जनसंचार की विस्तृत चर्चा करते हुए बर्लो लिखते हैं कि ''हमारा आधारभूत उद्देश्य अपने व्यक्तित्व और उस वातावरण जिसमें हम अपने को पाते हैं, के बीच के, मूल संबंध को बदलना होता है। विशेष रूप से हमारा मूल उद्देश्य उस सम्भावना को कम करना है जिसके अनुसार यह माना जाता है कि हम पूरी तरह से बाह्य कारकों के अधीन हैं तथा हम स्वयं ऐसे कारकों का निर्माण करते हैं। संचार में हमारा प्राथमिक उद्देश्य है-प्रभावी एजेन्ट बनाना, दूसरों को, अपने भौतिक परिवेश को एवं स्वयं को प्रभावित करना, निर्धारक एजेन्ट बनना एवं विभिन्न गतिविधियों के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करना। संक्षेप में, हम प्रभाव डालने के लिए सोद्देश्य प्रभाव डालने के लिए सम्प्रेषण करते हैं।''[4]

लेक्सिकॉन यूनिवर्सल इनसाइक्लोपीडिया के अनुसार ''संचार से आशय विविध प्रकार के ऐसे व्यवहारों, प्रक्रियाओं एवं तकनीकों से है जिनके द्वारा सूचनाओं से अर्थ की

---

[2] मीडिया विमर्श आधुनिक संदर्भ में, डॉ.राम लखन मीणा, पृ.सं. 38

[3] जनसंचार सिद्धान्त और अनुप्रयोग, विष्णु राजगढ़िया, पृ.सं. 22-23

[4] पत्रकारिता : विविध विधाएँ, डॉ.राजकुमारी रानी, पृ.सं. 63

उत्पत्ति अथवा स्थानांतरण होता है। इसमें विविध गतिविधियां शामिल हैं। जैसे - वार्त्तालाप कंप्यूटरों द्वारा डाटा का आदान-प्रदान, पक्षियों का प्रणय-निवेदन, किसी कला का भावात्मक प्रभाव इत्यादि।''[5] रेड फील्ड का कहना है कि ''संचार तथ्यों तथा विचारधाराओं के मानव विनिमय का विस्तृत क्षेत्र है।''[6] लेंडवर्ग के अनुरूप '' संचार उस पारस्परिक क्रिया का रूप है जो प्रतीकों के माध्यम से घटित होता है। ये प्रतीक, चित्रीय, प्लास्टिक, मौखिक या अन्य किसी रूप में हो सकते हैं और किसी व्यवहार विशेष के लिए उद्दीपन का कार्य करते हैं। ऐसा व्यवहार जो व्यक्ति विशेष की विशेष दशाओं के अभाव में स्वयं प्रतीक द्वारा उद्घाटित नहीं हो पाता।''[7] कॉफिन और शॉ (Coffin and Shaw) के मतानुसार संचार समझ या बुद्धि का विनिमय है। उन्हीं के शब्दों में - ''Communication is an exchange of understanding.''[8]

इस तरह संचार की परिभाषाएं कई हैं, असल में जनसंचार या मीडिया तो, किसी एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति अथवा किसी एक व्यक्ति से कई व्यक्तियों को कुछ सार्थक चिह्नों, संकेतों या प्रतीकों के द्वारा सूचना, जानकारी या ज्ञान का आदान-प्रदान करना है। अर्थात् एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से, एक समूह को दूसरे से तथा एक देश को दूसरे से जोड़ना संचार का काम है। अतः संचार सामाजिक पारस्परिक क्रिया की प्रक्रिया है।

---

[5] जनसंचार सिद्धान्त और अनुप्रयोग, विष्णु राजगढ़िया, पृ.सं. 23

[6] मीडिया विमर्श आधुनिक संदर्भ में, डॉ.राम लखन मीणा, पृ.सं. 38

[7] पत्रकारिता : विविध विधाएँ, डॉ.राजकुमारी रानी, पृ.सं. 62

[8] जनसंचार और हिन्दी पत्रकारिता, डॉ.अर्जुन तिवारी, पृ.सं.1

ख़बर के संदर्भ और श्रोता के बीच संप्रेषण-प्रक्रिया में माध्यम की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। बिना किसी संचार माध्यम के मीडिया का अस्तित्व संभव नहीं है। संचार के विकास क्रम की दृष्टि से मीडिया के निम्न प्रकार बताया जा सकता हैं -

1.5.1. परंपरागत जनसंचार माध्यम

1.5.2. मुद्रण माध्यम/प्रिंट मीडिया

1.5.3. फिल्म

1.5.4. इलेक्ट्रॉनिक माध्यम

(क) रेडियो (ख) टी.वी. (ग) डिजिटल माध्यम

1.5.5. नव इलेक्ट्रॉनिक माध्यम

1.5.1. परंपरागत जनसंचार माध्यम

तकनीकी क्रांति के पूर्व लोकमाध्यमों की समृद्ध परंपरा रही हैं। यह लोगों के धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग बन गये थे। काफी रोचक एवं दिल लुभानेवाली ढंग की इसकी प्रस्तुति ने जनमानस का विश्वास भी जीत लिया था। इसका एक और कारण यह भी था कि, यह जीवन की घटनाएँ व समस्याओं को इन माध्यमों के द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत की जाती थी कि वे दर्शकों के जीवन के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेता था। अतः मनोरंजन के साथ यह मूल्य के विकास एवं संदेश को जनसमुदाय तक सम्प्रेषित करने का सशक्त माध्यम रहे हैं। इसमें लोकगीत, नाटक, कठपुतली, नौटंकी, स्वाँग, खेल-तमाशा, नृत्य आदि जनसंचार की दृष्टि से भारत में प्रचलित प्राचीन परंपरागत जातीय व प्रान्तीय लोकमाध्यम रहे हैं। संगीत स्वांग परंपरा

(लोकनाट्य) वैदिक काल से ही चली आ रही है। लोकमाध्यम एवं लोकनाट्य से प्रेरणा ग्रहण कर पारसी थिएटर के प्रभाव में आधुनिक रंगमंच का विकास हुआ। फिल्म, दूरदर्शन एवं आकाशवाणी के प्रभाव से रंगमंच का प्रभाव जरूर कुछ कम हुआ किन्तु अभी भी यह जीवंत और जागृत है। समग्र रूप से परंपरागत जनसंचार माध्यमों को निम्नलिखित रूप से विभाजित कर सकते हैं।

1.5.1.1 लोकगीत

1.5.1.2 लोक गाथा

1.5.1.3 लोक कथा

1.5.1.4 लोक नृत्य

1.5.1.5 लोकनाट्य या जन-थियेटर

1.5.1.6 लोककला

1.5.1.1 लोकगीत

लोकगीत की परंपरा तीज, त्योहार, फसलों की कटाई, बच्चे के जन्म, विवाह, मुण्डन आदि अवसरों पर विशेष रूप से गाया जाता है। ग्रामीण जनता इन गीतों को बड़े चाव से गाया व सुनाया जाता है। इन गीतों को स्त्रीयों के साथ पुरुष भी गाते हैं। आज भी भारत के विभिन्न प्रदेशों में वहाँ की क्षेत्रीय बोली में लोकगीतों का खूब प्रचलन है। जैसे - मथुरा में यादव जाति के लोग 'बिरहा' गाते हैं, बिहार में 'झूमर' का प्रचलन, इसी प्रकार महाराष्ट्र की ग्रामीण जनता के बीच 'लावनी' का प्रचार आदि।

1.5.1.2 लोक गाथा

विश्व के सभी देशों में लोकगाथा पाया जाता है। अंग्रेजी में इसका पर्याय बैलेड (Ballad) है। बैलेड लैटिन के 'बैलेर' से बना है जिसका अर्थ है 'नाचना'। ये बैलेड गीत गाते समय नृत्य भी किया जाता था, लेकिन आजकल नृत्य का प्रचलन नहीं है। अब यह कथात्मक गीत के रूप में गाया जाता है। यह छोटे पदों की मनोरंजनपूर्ण कविता होती है जिसमें कोई लोकप्रिय कथा अत्यंत प्रभावी ढंग से कही जाती है। जैसे - प्रेम कथात्मक गाथाओं में : लैला मजनू, ढोला मारूरा दूल्हा आदि वीर कथात्मक गाथाओं में : विजयमल, आल्हा और ऊदल आदि रोमांच कथात्मक गाथा में : सोरठी। कहा जाता है कि, साहित्य की सृष्टि तथा वर्णमाला की सृष्टि से भी पहले लोकगाथा की सृष्टि हुई है। वास्तव में यह निरक्षर जनता के संप्रेषण की सबसे बड़ी माध्यम रही है।

1.5.1.3 लोक कथा

प्राचीन काल से ही मौखिक एवं लिखित रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक निरन्तर प्रवाहित होती रही परंपरागत जनसंचार माध्यम हैं लोक कथाऐं। इसमें मंगल-कामना की भावना, प्रेम, प्रकृति का विस्तारपूर्वक वर्णन, रहस्य एवं अलौकिकता की प्रधानता आदि का समावेश रहता है। लोक कथा के प्रमुख स्रोत पंचतंत्र, हितोपदेश, बैताल पंचविशतिका, बृहत्कथा आदि ग्रंथ हैं। इन लोक कथाओं के सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इनमें कोई न कोई संदेश छिपा रहता है जो जनकल्याण के लिए होता है।

1.5.1.4 लोक नृत्य

नृत्य के माध्यम से हृदय के अन्दर छिपी हुई बातों की अभिव्यक्ति आसानी से किया जा सकती है। जहाँ तक संप्रेषण की बात है इसके द्वारा मानवीय संवेदनाओं की सहज अभिव्यक्ति की जा सकती है। लोक नृत्य, प्रत्येक उत्सव या सार्वजनिक अवसरों में ही विशेषकर दिखाई देता है। इसके उदाहरण हैं - केरल की 'कथकली', 'मोहिनीअट्टम', आन्ध्र प्रदेश की कुचीपुडी', असम का 'बिहू', पंजाब का 'भांगड़ा' गुजरात का 'गरबा' आदि।

1.5.1.5 लोकनाट्य या जन-थियेटर

आम जनता के मनोरंजन का सबसे उत्तम साधन है लोकनाट्य। प्राचीन काल में यह परंपरा रासो काव्य से मिलती है। भक्तिकाल में इसका विकास तेज़ी से होने लगा। फलस्वरूप रासलीला, रामलीला आदि लोकनाटकों की अभिव्यक्ति हमें देखी जा सकती हैं। इसके अलावा हमारे देश में स्वांग (हरियाणा), तमाशा (महाराष्ट्र), नौटंकी (उत्तर प्रदेश) आदि के रूप में लोकनाट्य खूब प्रसिद्ध है। इसका मंच शास्त्रीय नाटकों के विपरीत खुला मंच है जिसमें पर्दा गिराने और उठाने का क्रम नहीं है। लोकनाट्य में मुख्यतः लोक-विश्वास और लोक रूढ़ियों की प्रधानता रहती है। साथ ही साथ इसमें गीतों, कहावतों और नगाड़ा, ढोलक आदि वाद्य यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। लोकनाटकों की भाषा स्वाभाविक एवं लोक-भाषा होती है।

1.5.1.6 लोककला

भारत की अनेक जातियों व जनजातियों में पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही पारंपरिक कलाओं को लोककला कहते हैं। भारतीय संस्कृति में लोककलाओं को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। इसने साहित्य, कला और संगीत के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया है। जैसे कि भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने की अपनी कलात्मक रीति-रिवाज आज भी जीवित है। मिट्टी के बर्तन गढ़ने, गृह निर्माण, छप्पर बनाने, टोकरी बनाने, चटाई-चारपाई बनाने की अद्‌भुत कला हमारे देश में आज भी प्रचलित है। नया घर खरीदने पर पूजा-पाठ, शादी बच्चे का जन्म, विभिन्न त्योहार आदि के अवसर पर इन कलाओं को देखा जा सकता है।

देखा जाए तो, संचार के अन्य माध्यम समाज के केवल विशिष्ट वर्ग तक सीमित रहे हैं, लेकिन यह लोकमाध्यम दूरवर्ती, निरक्षर एवं अभावग्रस्त समाज को भी लेकर चले हैं। तकनीकी विकास के कारण कुछ हद तक इन माध्यमों के ह्रास होने लगे थे। किन्तु दूसरी ओर वही तकनीकी माध्यमों से इनकी पुनः प्रस्तुति भी आज संभव हो रही हैं, यह अत्यंत प्रसन्नता की बात है।

1.5.2. मुद्रण माध्यम/प्रिंट मीडिया

मुद्रण संचार माध्यम वे हैं, जिनके द्वारा सूचना का संचार मुद्रित रूप में होता है। इसे ही प्रायः 'प्रिंट मीडिया' या 'प्रेस' कहा जाता है। विश्व पत्रकारिता के इतिहास में कागज और मुद्रण के आविष्कार के साथ समाचारपत्र का जन्म हुआ था। वास्तव में प्रिंट मीडिया का अस्तित्व में आना तभी संभव हुआ, जब सूचनाओं के व्यक्तिगत संप्रेषण को

सार्वजनिक करने की ज़रूरत महसूस हुई। इसके लिए अनेक माध्यमों का सहारा लिया गया और सूचनाओं को अनेकानेक तरीकों से प्रस्तुत किया गया। वैसे तो, प्राचीन काल में मनुष्य अपनी संदेश, विचारधारा व ज्ञान को सुरक्षित रखने पत्थरों में तो कभी शिलालेखों पर लिखा अथवा खुदवाया करता था। बाद में अनेक ग्रन्थ भोजपत्रों पर लिखे हुए मिले। फिर जाकर ही कागज की खोज हुई थी। कागज तैयार होने के बाद स्याही और कलम से बहुत सुन्दर ढंग से लिखना शुरू हुआ।

जनसंचार का प्रारंभ अखबारों के उदय के साथ माना जाता है। लेकिन प्रिंट मीडिया के विकास के पहले परंपरागत रूपों में जनसंचार मौजूद था। व्यापक लोगों तक किसी सूचना को पहूँचाने के लिए ढोल-नगाड़े, भोंपू, तोप, चर्च की घंटियां, धुआं, आग तथा अन्य संकेतों का उपयोग होता था। धीरे-धीरे संचार के आवश्यकताओं के साथ उसके स्वरूप एवं उपकरणों में भी विकास होने लगा। संदेश को कहानी, कविता, गीत नृत्य, नाटक इत्यादि के रूपों में प्रसारित किया जाने लगा।

मुद्रण कला के आविष्कार और विकास का सबसे बड़ा श्रेय चीन को ही जाता है। शुरुआती दौर में अर्थ अलग-अलग ढले मुद्रण को एक ढंग से जमाकर शब्द, लाइन, परिच्छेद तथा पृष्ठ बनाना तथा उसके पृष्ठभाग पर स्याही लगाकर दबाव द्वारा कागज पर उसका प्रतिरूप (छाप) लेता था। ई.सन् 1041 में श्री पिन्शैंग (चीनी) ने मिट्टी के मुद्रण बनाये। इन अक्षर-टाइप को जमाया जा सकता था। छाप लेने के पश्चात् उन्हें अपने-अपने स्थान में वापस रखा जा सकता था और पुनः इनका उपयोग करता था।

कागज बनाने की कला पूर्व से यूरोप में 11 वीं शताब्दी में लायी गई थी। जर्मनी में ई.सन् 1390 में प्रथम पेपर मिल की स्थापना हुई। जर्मनी के योहन गुटनबर्ग (मुद्रण का पितामह) द्वारा पन्द्रहवीं सदी के मध्य में (1440 के आस पास) जब छापने की मशीन की खोज की, तब जाकर प्रिंटिंग में गति आयी। आधुनिक पत्रकारिता का इतिहास लगभग यहीं से शुरू होता है। ई.सन् 1475 में 'सर विलियम केकस्टन' मुद्रण कला इंग्लैंड में लाये तथा पुर्तगाल में इसकी शुरुआत 1544 में हुई। ई.सन् 1556 में पुर्तगाल के ईसाई धर्म प्रचारकों के माध्यम से मुद्रण पद्धति भारत के गोवा में पहूँची। गोवा में प्रथम प्रिंटिंग प्रेस धार्मिक पुस्तकों के मुद्रण हेतु शुरू किया।

18 वीं सदी तक आते-आते मुद्रण, डाक एवं अन्य संचार साधनों में सुधार एवं विकास होने लगा। मुद्रण तथा डाक ये दोनों समाचार एकत्र कर समाचार पत्रों के निर्माण तथा वितरण में एक दूसरे के पूरक बने। जिससे समाचार पत्रों का मुद्रण कर उन्हें लोगों तक पहूँचाना आसान हो गया। भारत में पत्रकारिता अथवा समाचार पत्रों का आरंभ अंग्रेजों के अगमन के बाद शुरू हुआ। धर्म प्रचार की दृष्टि से कलकत्ता के उपनगर श्रीरामपुर में मुद्रणालय खोला। जनवरी 29, सन् 1780 भारतीय पत्रकारिता का सुनहरा दिन था, क्योंकि उसी दिन 'बंगाल गेजेट या कलकत्ता जनरल एडवरटाइजर' नामक भारत का पहला समाचार पत्र प्रकाशित हुआ। इस समाचार पत्र के प्रकाशक युरोप के जेम्स अगस्ट हिक्की नामक अंग्रेज सज्जन थे। जेम्स अगस्ट हिक्की इस समाचार पत्र के प्रकाशक होने के साथ-साथ इसके संपादक तथा मुद्रक भी थे। इसलिए इस समाचार पत्र

को 'हिक्की गेजेट' भी कहा जाता था। भारत में पत्रकारिता को बढ़ावा देने में कारणीभूत जेम्स अगस्टस हिक्की 'पत्रकारिता के पितामह' भी कहलाए।

कानपुरवासी जुगल किशोर शुक्ल के सम्पादन में हिंदी का प्रथम समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड', 30 मई 1826 को कोलकत्ता से प्रकाशित हुआ। एक वर्ष से कुछ अधिक समय चलकर 'उदंत मार्तण्ड' बंगल में हिंदी पाठकों की कमी एवं धनाभाव के कारण 4 दिसंबर 1872 में बंद हो गया। इसके पश्चात् पं.जुगल किशोर शुक्ल का ही एक और समाचार पत्र सन् 1850 में आया, जिसका नाम था 'सामदंड मार्तण्ड'। स्वतंत्रता का संदेश पहुँचाने के लिए यह पत्रिकाऐं प्रकाशित की। इसके अतिरिक्त विदेशी मिशनरियों ने भी अपने धर्म प्रचार के लिए देश की भाषाओं में पत्रिकाऐं निकालीं।

सन् 1857 में भारतियों का अंग्रेजों के विरुद्ध पहला स्वतंत्रता संग्राम चला। ऐसे समय में हिंदी के पत्रकार तथा समाज सुधारकों ने समाचार पत्रों को यंत्र बनाकर अंग्रेजों के विरुद्ध धर्म-युद्ध शुरू किया। सन् 1857 के उपरांत कई पत्र प्रकाशित हुए। अनेक साहित्यकार जो स्वयं संपादक थे समाचार पत्रों का प्रकाशन करने लगे, जिससे कुछ पत्रों में साहित्यिक सामग्री का समावेश होने लगा। पत्रिकाओं का वर्गीकरण उसकी समय अवधि तथा विषय के आधार पर विभिन्न विषयों में बाँटा जा सकता है। साप्ताहिक, मासिक, पाक्षिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक तथा वार्षिक में बाँटा जा सकता है। इनमें से साप्ताहिक तथा मासिक अधिक लोकप्रिय हैं। विषय की दृष्टि से साहित्यिक, खेलकूद, व्यापारिक, फिल्मी, महिलाओं, पुरुषों, बच्चों, समाचार पत्रिकाऐं, रोजगार पत्रिकाऐं आदि पत्रिकाऐं प्रकाशित की हैं।

पत्रिकाऐं लोगों की विचारधारा में परिवर्तन लाने में बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं। विशेषकर स्वतंन्त्रता आन्दोलन के समय लोगों में राष्ट्रीयता की भावना पैदा करना तथा लोगों को विदेशी सरकार के विरुद्ध करना आदि इन्हीं पत्रिका से ही किया हैं। और तो और दैनिक जीवन के रहन-सहन, खान-पान, पहनावा आदि पर भी यह पत्रिका प्रकाश डालती हैं। मात्र यही नहीं धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि सूचनाऐं देकर लोगों के ज्ञान में वृद्धि करती हैं। साथ ही चुटकले, हास्य-व्यंग्य लेख आदि से लोगों का मनोरंजन भी करते हैं। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार पर, बुराइयों पर चोट करने से भी पत्रिकाऐं पीछे नहीं रहती।

पहली और आज की पत्रकारिता में यांत्रिक परिवर्तन के बाद सबसे बड़ा परिवर्तन उसका मिशन से व्यवसाय बन जाना है। 1940 में पत्रकारिता का एकमात्र लक्ष्य राष्ट्रोत्थान, समाजोत्थान तथा मानवोत्थान था। विदेशी सत्ता से निरंतर संघर्ष करना ही उसका मिशन था। वैसे आज की बदलती परिस्थितियों में पत्रकारिता के स्वरूप में बदलाव आना स्वाभाविक है। पत्रकार समाज के ही अंग है। उन्हें भी अच्छा खाना, पहनावा और रहना चाहिए। उसके बच्चों केलिए महंगी उच्च शिक्षा, चिकित्सा व्यवस्था और मनोरंजन चहिए। तब तो उसे भी अच्छा वेतन और सुविधाऐं प्राप्त होनी चाहिए। परन्तु दूसरी और स्वयं पत्रकार को पुराने मिशन का लक्ष्य को भूलना भी नहीं है। लेकिन आज का पत्रकार नैतिक मूल्यों की और कम उन्मुख होता दिखाई देता है और यह मीडिया जगत में एक गंभीर समस्या के रूप में उभर रहा है।

वास्तव में 'समाचार पत्र' जनता की संसद होती है, जिसका अधिवेशन सदा चलता रहता है। सामाजिक एवं राजनीतिक जागरूगता लाने में मुद्रण माध्यमों की भूमिका को हम नकार नहीं सकते हैं। लेकिन आज वे अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को गंभीरता से जानते हुए भी उपभोक्तावाद के चंकुल में फसकर कहीं मसालेदार, चटपटे या सनसनीखेज समाचारों का प्रसारण करने में मज़बूर है।

पत्रकारिता का अस्तित्व में आना तब संभव हुआ, जब सूचनाओं के व्यक्तिगत संप्रेषण को सार्वजनिक करने की जरूरत को महसूस किया। योहानेस गुटेनबर्ग द्वारा टाइप के माध्यम से मुद्रण विद्या का आविष्कार किया उसके बाद विचारों और सूचनाओं को मुद्रित रूप में एक साथ व्यापक लोगों तक प्रसारित होने लगे। इससे हरेक व्यक्ति के पास समान रूप में संचार पहूँचते थे। वास्तव में मुद्रण कला ने मानव सभ्यता के इतिहास तथा संचार के क्षेत्र में एक क्रांति ला दी थी, जिसके ज़रिए मनुष्य विश्व को समझने और दूसरों तक अपने विचारों को पहुंचाने की प्रभावशाली तकनीक हासिल कर ली।

प्रत्येक पत्रिका का एक निश्चित पाठक वर्ग तथा उसका सन्दर्भ क्षेत्र होता है। दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक अथवा वार्षिक संस्करण वाली पत्र-पत्रिकाएँ विभिन्न भाषाओं में अपनी जाल बिछायी हैं। फोटोग्राफी एवं मुद्रण की विकसित तकनीकों के प्रयोग से ये पत्र-पत्रिकाएँ नित-नूतन होने के साथ समाज में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने लगा है। साहित्य की भाँति पत्रकारिता समाज का दर्पण है,

जिसका जनमत निर्माण में विशेष योगदान रहा है। पत्रकारिता के इन्हीं दायित्व को देखकर इसे चतुर्थ सत्ता का औहदा प्रदान किया।

1.5.3. फिल्म

पत्रकारिता के बाद अगले संचार माध्यम के रूप में फिल्म की शुरूआत हुई। आज़ादी से पूर्व स्वतन्त्रता आंदोलन शामिल थी तो बाद में फिल्मों ने राष्ट्रीय एकता, हरिजनोद्धार,नारी-जागरण, छूआछूत, साम्प्रदायिकता, अन्याय, शोषण, अत्याचार, सामन्तवाद से लेकर राजनीति तक राष्ट्रीय हित के मुद्दों पर विचार-विमर्श एवं जागरण का प्रयास किया। आज़ादी से लेकर आज तक फिल्मों को जनजागरण के सशक्त माध्यम के रूप में निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है।

विज्ञान का अनोखा आविष्कार सिनेमा अथवा फिल्म का श्रेय अमरीका के निवासी एडीसन को जाता है। पहले ये छायाचित्र मूक होते थे परंतु आधुनिक काल में इसमें ध्वनि या वाणी का समावेश हुआ है। इन चलती-फिरती तसबीरों को इंग्लैडवाले 'पिक्चर्स', अमरीका निवासी 'मूवीज' तथा फ्रांन्सिसी 'सिनेमा' के नाम पुकारते हैं। भारतीय इन्हें 'बायोस्कोप' कहते हैं।

भारत में पहली बार फ्रांस के ल्यूमिअर बन्धुओं ने बंबई के वाटसन होटल में पहली बार फिल्म प्रदर्शन किया वहीं से संचार माध्यम के रूप में फिल्म की शुरुआत (7 जुलाई सन् 1896 ई. को) हुई। इस फिल्म प्रदर्शन की सफलता से प्रभावित होकर जनवरी 1897 से विदेशी फिल्मों के प्रदर्शन का सिलसिला भारत में प्रारंभ हो गया।

भारतीय चलचित्र के इतिहास में दादा साहब फाल्के का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इनके योगदान के कारण इन्हें भारतीय फिल्मों का पिता कहे जाते हैं। सन् 1930 से भारतीय फिल्मों की छाया बदलने लगी। साथ ही सिनेमा के विकास में गीत, नृत्य, नाटक, उपन्यास, कविता, चित्रकारी, शिल्प इत्यादि कलाओं ने विशिष्ट योगदान दिया।

भारतीय सिनेमा का अगर अवलोकन करें तो मूलतः इसकी शुरुआत आजादी से 30 वर्ष पहले मानी जाती है। अर्थात् इसकी शुरुआत सन् 1931 से ही कही जा सकती है, जब 'आलमआरा' का प्रदर्शन पहली बार बडे पर्दे पर बोलती हुई फिल्म के रूप में हुआ। इसके बाद स्वतंत्रता मिलने तक के फिल्मों में राष्ट्रवादी विचारों तथा नैतिकवादी दृष्टिकोणों से प्रेरित फिल्म निकले। धार्मिक, मिथकीय और सामाजिक कथानकों के माध्यम से अपने युग को अभिव्यक्ति किया गया। इसे हिंदी सिनेमा का सौभाग्य कहा जा सकता है कि इसने आरंभिक काल में ही 'देवदास' (1931), 'अछूत कन्या' (1936), 'दुनिया न माने' (1937), 'पुकार' (1939), 'आदमी' (1939), 'सिकंदर' (1941), 'पडोसी' (1941) तथा 'नीचा नगर' (1946) जैसी प्रतिबद्ध एवं सफल फिल्में निकाली थी।

इसके बाद हिंदी फिल्मी जगत को कभी पीछे मुडके देखने की स्थिति नहीं आयी। एक के बाद एक फिल्म आती गयी। 'प्रेमरोग', 'दस लाख', 'मुझे जीने दो', 'जिस देश में गंगा बहती है', 'दोस्ती', 'गाँधी', 'मुगले आजम', 'हीरो', 'कर्मा' आदि कई फिल्मों ने दर्शकों को जीवन के विभिन्न पक्षों से संबंधित महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान की है। उसी प्रकार हिंदी भाषा को व्यापकता प्रदान करने में हिंदी फिल्मों का प्रभावी योगदान रहा है।

हिंदी फिल्में आरंभ में कलकत्ता, बंबई, मद्रास जैसी अहिंदी भाषी नगरों से बनती रही तथा उसका अखिल भारतीय प्रदर्शन होता रहा। पूरे भारतीय जनता हिंदी फिल्मों और गानों को सीने से लगाया। मात्र हिंदी भाषा को ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं में प्रदर्शित फिल्में भी लोगप्रियता प्राप्त की, जिसमें राष्ट्रवादी विचारों, नैतिकतावादी दृष्टिकोणों व मनोरंचन आदि से प्रेरित फिल्में रही हैं।

सिनेमा के साथ यह सुविधा है कि वह कलात्मक विधाओं को जीवंत माध्यम के रूप में प्रस्तुत कर सकता है। साथ ही यह जटिलताओं का सरलीकरण भी कर सकता है। सिनेमा की कमज़ोरी यह है कि ये समाज के सभी वर्गों के लिए एक ही प्रकार का संदेश संप्रेषित कर सकता है। समाज के अलग-अलग वर्गों की अलग-अलग आवश्यकताओं को पूरा करना इस माध्यम के लिए कठिन है।

1.5.4. श्रव्य-दृश्य संचार माध्यम

1.5.4.1. रेडियो

संचार माध्यमों के अगला चरण इलेक्ट्रॉनिकी के उत्कर्ष का है। वास्तव में रेडियो की कहानी 1815 ई. से शुरू होती है, जब इटली के एक इंजिनियर गुग्लिल्मो मार्कोनी ने रेडियो टेलिग्राफी के जरिए पहला संदेश प्रसारित किया। यह संदेश 'मार्स कोड' के रूप में था। 1870 में केम्ब्रीज विश्वविद्यालय के पहले प्रयोगात्मक भौतिकी के प्रोफेसर जेम्सक्लार्क मैक्सवेल ने विद्युत चुम्बकीय तरगों के माध्यम से बिना तार के संदेश भेजने की एक नयी संचार तकनीक की अवधारणा पर विचार किया था। इसके साथ ही इलेक्ट्रॉनिक जनप्रसारण माध्यमों के पहली दस्तक की आवाज़ सुनाई पड़ी।

सन् 1887 में हेनरिच रूडोल्फ हर्ज़ ने रेडियो तरंगों के अस्तित्व को प्रमाणित किया। इटली के गुग्लिल्मो मार्कोनी ने सन् 1895 में इन्हीं रेडियो तरंगों द्वारा बिना तार के संकेत भेजने और प्राप्त करने के सफल प्रयोग किये। इसके अगले ही वर्ष (1896) में लंदन में रेडियो पेटेंट होने के साथ ही इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार माध्यमों के वर्तमान युग की शुरुआत हो गयी। इस प्रकार रेडियो तरंगों की नयी प्रौद्योगिकी ने बेतार के तार की तकनीक से एक नये उपकरण 'रेडियो' को जन्म दिया जो बाद में जनप्रसारण का लोकप्रिय माध्यम बन गया।

दुनिया में पहला नियमित प्रसारण अमेरिका के पीट्सबर्ग में सन् 1920 में शुरू हुआ था, जबकि इंग्लैंड में मारकोनी की कंपनी चेम्सफोर्ड ने 23 फरवरी 1920 को पहली बार सफल प्रसारण किया था। ब्रिटिश ब्रॉडकेस्टिंग कंपनी ने नवंबर 1922 में काम करना शुरू किया। भारत में भी इसी समय, रेडियो प्रसारण की शुरूआत हुई थी। अगस्त 1921 में 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' ने डाक एवं टेलीग्राफ विभाग के साथ मिलकर अपने बंबई स्थित कार्यालय से पहला रेडियो प्रसारण किया। गवर्नर सर जॉर्ज लायड ने पहले प्रसारण (संगीत के विशेष कार्यक्रम) का आनंद 175 किलोमीटर दूर पूना स्थित अपने कार्यालय से लिया था। दुनिया के अन्य देशों की तरह भारत में भी आरंभिक दिनों में सरकार ने रेडियो पर अधिक ध्यान नहीं दिया। धीरे-धीरे रेडियो विकास की सीढ़ियाँ चढ़ने लगी।

जून 1922 में देश में पहली बार प्रसारण शुरू करने का प्रस्ताव डाक एवं टेलीग्राफ विभाग के महानिदेशक ने भारत सरकार के सामने रखा। फलस्वरूप रेडियो

प्रसारण के लाइसेंस का ड्राफ्ट तैयार किया गया। समाचारों पर कॉपीराइट और सेंसरशिप, रेडियो सेटों और लाइसेंस फीस जैसे मुद्दों पर चर्चा हुई। इसी बीच कलकत्ता में स्थित रेडियो क्लब ऑफ बंगाल को अस्थायी तौर पर रेडियो प्रसारण की अनुमति दे दी गई। नवंबर 1923 में एक छोटे मारकोनी ट्रांसमीटर की मदद से कार्यक्रमों का प्रसारण शुरू कर दिया गया। आगे चलकर 1924 जून में बॉम्बे रेडियो क्लब ने भी अपना प्रसारण आरंभ कर दिया। इसके कुछ दिनों के बाद मद्रास में भी (31 जुलाई) रेडियो प्रसारण की औपचारिक शुरुआत हो गई। हालाँकि मद्रास प्रेजिडेंसी रेडियो क्लब इसी साल 16 मई को गठित हो चुका था। मद्रास प्रेजिडेंसी रेडियो क्लब आरंभ करने में कृष्णास्वामी चेट्टी की काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। सन् 1927 तक यह रेडियो क्लब अपना प्रसारण करता रहा, लेकिन उसके बाद आर्थिक तंगी के चलते इसे बंद करना पड़ा। 1930 अप्रैल में मद्रास में पुनः रेडियो प्रसारण आरंभ कर दिया। 1934 फरवरी में बी.बी.सी. के वी.ए.एम. बुलो की मदद से मद्रास रेडियो प्रसारण के लिए एक बृहत् योजना तैयार की गई। इस समय तक पूरे देश में रेडियो की चर्चा आम लोगों तक पहुँचने लगी थी। उस वक्त भी अंग्रेज़ दुविधा में थे। समस्याऐं अनेक थे, जैसे कि सरकार लाइसेंस फीस के ज़रिए अपनी आय बढ़ाना चाहती थी, लेकिन रेडियो प्रसारण के परिणाम को लेकर आशंकित भी थी। साथ ही रेडियो प्रसारित करना आर्थिक दृष्टि से कहाँ तक फायदे का सौदा रहेगा, इसको लेकर भी कोई स्पष्ट विचार नहीं था। सभी पहलुओं तथा परिणामों पर विचार-विमर्श करने के बाद भारतीय और अंग्रेजी कंपनियों को इस क्षेत्र में उतारने तथा रेडियो स्टेशन पर लगी सेंसरशिप में छूट एवं मौसम

समाचार, सरकारी आदेश, शैक्षणिक प्रचार निःशुल्क प्रसारित करने और रेडियो सेट रखनेवाले से 12 रुपए वार्षिक शुल्क के रूप में वसूले जाने (जिसमें 10 रुपए प्रसारण कंपनी को और 2 रुपए सरकार को मिलेंगे) की अनुमति देने का मन बना लिया।

23 जुलाई, 1927 को लॉर्ड इरविन ने बंबई स्टेशन का उद्घाटन किया। उनका मानना था कि भारत में प्रसारण के लिए अनेक संभावनाएँ हैं। यानि कि भारत के छोटे-छोटे गाँवों में काम से थके हुए लोगों को, उसी प्रकार काम के सिलसिले में घरों से दूर रहनेवाले लोगों को, और तो और घर संभालनेवाली बहु-बेटियाँ व बूढ़े-बुजुर्ग लोगों के लिए रेडियो प्रसारण किसी शानदार दावत से कम नहीं है। चाहे मनोरंजन की बात हो, खेती-बाड़ी की बात हो या फिर शिक्षा की, रेडियो प्रसारण में असीम संभावनाएँ छिपी हैं।

रेडियो प्रसारण की बंबई में शुरुआत होने की खबर को 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' समाचार-पत्र ने काफी प्रमुखता से छापा था। बंबई स्टेशन आरंभ होने के कुछ पहले ही कंपनी ने 'इंडियन रेडियो टाइम्स' नामक अपनी कार्यक्रम पत्रिका में श्रोताओं के लिए एक हफ्ते पहले ही रेडियो कार्यक्रमों की सूची छापी जाती थी।

आज़ादी आन्दोलन तेज होने के बाद रेडियो के प्रति सरकार की चिंताएं बढ़ गई। इस वजह से सरकार ने रेडियो प्रसारण पर सेंसरशिप लगाने का फैसला किया। 15 जून 1927 को जारी किए गए एक पत्र में गृह विभाग के सचिव ने बंबई और बंगला की सरकार को सरकार की प्रसारण संबंधी नीतियों के बारे में आगाह किया कि, कोई भी प्रसारण इस प्रकार का नहीं होना चाहिए जो जनता के नैतिक मुल्यों के खिलाफ हो,

जनता में विद्रोह की भावना को जन्म दे और उन्हें नक्सल व सांप्रदायिक आधार पर भड़काए।

रेडियो सेटों की कमी के कारण एक के बाद एक रेडियो स्टेशन घाटे में जा रहे थे। इंडियन ब्रॉडकास्टिंग कंपनी ने सरकार को प्रसारण अपने नियंत्रण में लेने का सुझाव दिया। आखिर सरकार ने कंपनी को अपने नियंत्रण में लेने और रेडियो प्रसारण जारी रखने का फैसला किया। 1 अप्रैल 1930 को 'इंडियन ब्रॉडकास्टिंग कंपनी' का नाम बदलकर 'इंडियन स्टेट्स ब्रॉडकास्टिंग सर्विस' (आई.एस.बी.एस.) कर दिया गया। सरकार केलिए भी यह समय काफी तंगी का दौर था और एक साल बाद घाटे के कारण सरकार ने रेडियो प्रसारण बंद करने की घोषणा कर दी। सारे देश में काफी विरोध उठे। अंततः मई 1932 में सरकार ने 'इंडियन स्टेट्स ब्रॉडकास्टिंग सर्विस' को सरकारी प्रबंधन के तहत चलाने का अंतिम निर्णय ले लिया। इसी समय अनेक अन्य राजा, नवाब और संस्थाएँ अपने बलबूते पर भी रेडियो स्टेशन चला रहे थे। लाहौर (सन् 1928), इलाहाबाद (सन् 1935), मैसूर (10 सितंबर 1935) आदि जगह में रेडियो स्टेशन चल रहे थे। बाद में इन सभी केंद्रों को (1950 में) ऑल इंडिया रेडियो में शामिल कर लिया गया।

बी.बी.सी. से आए लियोनल फिल्डन (देश के पहले प्रसारण नियंत्रक) को भारत में रेडियो सेवा का नाम 'इंडियन स्टेट्स ब्रॉडकास्टिंग सर्विस' बड़ा अटपटा लगता था। अपनी आत्मकथा 'द नैचुरल बैंट' में उन्होंने 'इंडियन स्टेट्स ब्रॉडकास्टिंग सर्विस' का नाम बदलकर 'ऑल इंडिया रेडियो' करवाया। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटीश

सरकार 'ऑल इंडिया रेडियो' पर सेंसरशिप लगाया गया और रेडियो को युद्ध के एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। इसके लिए सरकार ने रेडियो पर फासीवाद और नाजीवाद के खिलाफ कार्यक्रम प्रसारित किए। आम लोगों को सेना में भरती होने के लिए प्रोत्साहित किया। नागरिकों को हवाई आक्रमण के दौरान सुरक्षा उपायों के बारे में सचेत किया। इन सबके अलावा, देश की रक्षा करनेवाले भारतीय सैनिकों के संदेश रिकॉर्ड करके रेडियो पर सुनाए जाते थे, ताकि भारत में उनके परिवार के लोग उनका हाल व समाचार जान सकें।

आजादी के समय भारत में आकाशवाणी के छह स्टेशन थे। इनके अलावा रजवाड़ों में भी कुल पाँच रेडियो स्टेशन काम कर रहे थे और रेडियो सेटों की संख्या में भी वृद्धि आ गयी थी। राष्ट्रीय नेताओं ने वैसे तो स्वतंत्रता आंदोलन के समय से ही ऑल इंडिया रेडियो के भविष्य की योजना बनानी शुरु कर दी थी, लेकिन अब वक्त उसे अमल में लाने का था। नेशनल प्लानिंग कमेटी ने इस पर विचार किया और अंत में सलाह दिया कि, संचार और प्रसाराण जन-उपयोग की सेवाएँ हैं और आम लोगों के जीवन को प्रभावित करती हैं, जिनका उपयोग राष्ट्र-निर्माण के एक लिए किया जाना चाहिए है। बाद में विभाजन के दौरान आकाशवाणी से देश भक्ति के गीत प्रसारित किए गए। साथ ही और भी कार्यक्रम रेडियो द्वारा चलाऐ गये। स्वतंत्रता-प्राप्ति के तुरंत बाद सूचना एवं प्रसारण मंत्री सरदार पटेल की सरकार ने आकाशवाणी के चहूँमुखी विकास की योजना बनाई। यह योजना 'पायलेट प्रोजेक्ट' के नाम से जाना जाता है। जिसके तहत

देश के सभी हिस्सों में रेडियो स्टेशन और स्टूडियो स्थापित करने की योजना बनाई गई और कुछ ही सालों में रेडियो की लोकप्रियता बढ़ गई।

पहली पंचवर्षीय योजना (1951-56) के दौरान संगीत, वार्त्ता, नाटक व रूपक जैसे कार्यक्रम रेडियो में शामिल होने लगा। फिल्म संगीत के लिए यह समय स्वर्णिम काल रहा। 60 का दशक देश में हरित क्रांति के लिए याद किया जाता है। इसी दौरान रेडियो पर नए बीजों की जानकारी, खाद का उपयोग, कृषि तकनीक की समझ और उत्तम कृषि प्रबंधन के बारे में किसानों को अवगत कराना आदि हरित क्रांति से जुड़े कार्यक्रम प्रसारित करने लगे। साथ ही साथ ट्रांजिस्टर के आगमन के बाद 60 के दशक में रेडियो सेट सस्ते हो गए और ग्रामीण लोगों के बीच इसकी लोकप्रियता भी बढ़ने लगी। तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66) के समय रेडियो स्टेशनों पर कार्यक्रमों के निर्माण के लिए स्टूडियो की व्यवस्था की जाने लगी। चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) के दौरान सन् 1967 में आकाशवाणी ने महत्त्वपूर्ण फैसला लेते हुए अपनी व्यावसायिक सेवा आरंभ कर दी। सबसे पहले बंबई, पूना और नागपूर स्टेशनों पर विविध भारती सेवा में विज्ञापन प्रसारित किए गए। सन् 1969 में युवाओं के लिए विशेष प्रसारण 'युववाणी' नाम से आरंभ किया गया। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79) का काल बड़ा ही राजनीतिक उथल-पुथल भरा रहा। आपातकाल के समाप्त होने के बाद, जनता पार्टी ने ही पहली बार राजनीतिक दलों के चुनावी प्रसारण को आकाशवाणी पर प्रसारित करने की अनुमति दी। पहली अप्रैल 1976 को आकाशवाणी से दूरदर्शन को

पृथक कर दिया गया। सन् 1977 में देश में पहला एफ.एम. प्रसारण मद्रास में आरंभ हुआ।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) के तहत आकाशवाणी को देश के सभी कानों तक पहुँचाना था। इसके लिए प्रत्येक सांस्कृतिक अंचल में कम-से-कम दो रेडियो चैनल (एक स्थानीय और एक राष्ट्रीय) उपलब्ध कराने की कोशिश की। इसके अलावा दुनिया भर में भी विस्तार करने की योजना थी। 80 के दशक में राष्ट्रीय स्तर पर रेडियो प्रसारण अधिक व्यवस्थित किया गया। 15 अगस्त, 1985 को हर घंटे में समाचारों का प्रसारण आरंभ किया गया। इनसेट श्रृंखला के उपग्रह अंतरिक्ष में सफलतापूर्वक छोड़ने के बाद भारत ने प्रसारण को आधुनिक स्वरूप देना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे सभी रेडियो स्टेशनों को सेटेलाइट के ज़रिए आपस में जोड़ना प्रारंभ किया गया। सन् 1985 में सरकार ने रेडियो और टेलिविजन सेटों पर लाइसेंस फीस खत्म करने का फैसला लिया और सन् 1988 में आकाशवाणी का राष्ट्रीय चैनल का आरंभ हुआ।

90 के दशक में देश में उदारीकरण और वैश्वीकरण का तेजी से प्रसार हुआ। सरकारी नीतियों में खुलेपन के चलते, विदेशी और निजी कंपनियों को अधिक छुट दी जाने लगी। तत्कालीन समय में यही गहन चर्चा रही कि सरकार अधीन रहे दूरदर्शन और आकाशवाणी जो जनहित प्रसारण करते आये हैं, उसका बदलते बाज़ार युग में क्या भविष्य रहेगा। 90 के दशक में रेडियो के श्रोताओं की संख्या तेजी से कम होने लगी थी। इसका एक कारण टेलिविजन का प्रसार था तो दूसरा कारण रेडियो कार्यक्रमों में

नएपन का अभाव था। जबकि 90 का दशक टोलीविजन जगत् में हलचल भरा रहा और इसके दर्शकों की संख्या निरंतर बढ़ती चली गई।

सन् 1990 में प्रसार भारती अधिनियम तैयार किया गया। इसके द्वारा प्रसार भारती नामक भारतीय प्रसारण निगम की व्यवस्था की गई है। इसके प्रमुख उद्देश्य था देश की एकता, अखंडता तथा संविधान के लोकतांत्रिक मूल्यों को बनाये रखना, सार्वजनिक हित के सभी विषयों पर सत्य और निष्पक्ष जानकारी प्रस्तुत करना, शिक्षा और साक्षरता का प्रसार करना, देश के विभिन्न क्षेत्रों, विभिन्न संस्कृतियों तथा भाषाओं को कार्यक्रम में पर्याप्त स्थान देना, खेलकूद से संबंधित कार्यक्रम तथा समाचारों में खेलकूद की खबरें प्रसारित करना, महिलाओं से संबंधित कार्यक्रमों का प्रसारण, युवाओं के कार्यक्रमों का प्रसारण, सामाजिक न्याय का प्रोत्साहन एवं असमानता के खिलाफ प्रचार करनेवाले कार्यक्रमों का प्रसारण, श्रमजीवी वर्ग के अधिकारों की रक्षा को बढ़ावा देने से संबंधित कार्यक्रम का प्रसारण करना आदि।

तत्कालीन समय में निजी चैनल निर्माताओं ने आकाशवाणी के एफ.एम. चैनल पर अपने कार्यक्रम पेश करने शुरू कर दिए थे। पहले तो विविध भारती पर प्रायोजित कार्यक्रम लंबे समय से प्रसारित किए जा रहे थे, अब यह दो या तीन घंटे प्रसारित होनेवाले कार्यक्रम व विज्ञापनों को निजी कंपनियों को सौंप दिया गया। आरंभ में विज्ञापनदाता निजी कार्यक्रमों में पैसा लगाने में हिचकिचाए। जैसे-जैसे कार्यक्रमों की लोकप्रियता का अनुमान विज्ञापनदाताओं को होने लगा, उसके बाद विज्ञापनों का अंबार लग गया, जिससे आकाशवाणी ने काफी आय अर्जित की।

1996 में आकाशवाणी ने अपनी इंटरनेट सेवा शुरू कर दी। अब कोई भी इंटरनेट पर आकाशवाणी सुन सकता है और इस प्रकार उपग्रह व इंटरनेट के माध्यम से आकाशवाणी दुनिया भर के लोगों को सुलभ हो गई। 23 नवंबर 1997 को प्रसार भारती अधिनियम लागू होने के बाद आकाशवाणी को प्रसार भारती निगम के अंतर्गत ला दिया गया। सन् 1999 में केंद्र सरकार ने अपनी नई एफ.एम. नीति की घोषणा की और एफ.एम. प्रसारण या एफ.एम. तरंगों को निजी कंपनियों के लिए खोल दिया गया। 90 के दशक में आकाशवाणी ने अपने कार्यक्रमों में नवीनता लाने की कोशिश की। विशेषकर निजी एफ.एम. चैनलों के आगमन के बाद विविध भारती की प्रस्तुति में काफी बदलाव आया।

सन् 2003 में आकाशवाणी ने दिल्ली के एफ.एम.-1 को एफ.एम. 'गोल्ड' और एफ.एम.-2 को एफ.एम. 'रेनबो' का नाम दे दिया। अब गोल्ड पर पुराने फिल्मी गीत प्रसारित किए जाने लगे और रेनबो पर नए एवं अंग्रेजी गाने प्रसारित किए जाने लगे। हालांकि आकाशवाणी की मार्केटिंग निजी चैनलों के मुकाबले अधिक आक्रामक नहीं रही, लेकिन कंटेंट के मामले में वह निजी चैनलों पर भारी पड़ता है। निस्संदेह आकाशवाणी अपने गौरवशाली अतीत के अनुसार अपने कार्यक्रमों में अनेक आचार संहिताओं के भीतर काम करता है। यही कारण है कि आकाशवाणी आज भी आम लोगों द्वारा काफी पसंद की जा रही है।

स्वाभाविक रूप से स्थानीय विज्ञापन जुटाने के लिए एफ.एम रेडियो चैनल के सामने श्रोताओं में लोकप्रियता हासिल करने की चुनौती थी। केवल फिल्मी गीत सुनाने

से यह सब संभव नहीं था। इसलिए चैनलों ने श्रोताओं की आवश्यकताओं को समझते हुए स्थानीय सूचनाएँ और स्थानीय स्वाद के अनुसार कार्यक्रम परोसना आरंभ कर दिया। सड़क पर जाम, बाजार में सेल, स्कूलों में दाखिला, स्थानीय समस्याओं को उठानेवाले कार्यक्रमों को सुनाते हुए चैनलों ने जल्दी ही शहरी लोगों की पसंद को पहचाना शुरू कर दिया।

1.5.4.2. टी.वी.

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ध्वनि की सफल यात्रा के समानान्तर चित्रों और ध्वनि को एकसाथ प्रसारित करने की प्रविधियाँ ढूँढ़ रही थीं। इस दृष्टि से साठ और सत्तर के दशक बहुत उल्लेखनीय है।

जार्ज.आर.कैरी (George R Carey) ने 1875 में, बोस्टन में, ऐसी यान्त्रिक प्रणाली विकसित की, जिसमें प्रत्येक सर्किट पर सभी चित्र (Picture Elements) एक साथ और एक ही समय में प्रसारित किए (Transmitted) गए। टेलीविज़न के आविष्कार की दिशा में कैरी की इस यान्त्रिक प्रणाली के ऐतिहासिक महत्त्व को हम नकारा नहीं सकते। 1800 में अमेरिका के ई.ई.सैव्येर (E.E.Sawyer), फ्रांस के मॉरिस ले' ब्लाँक (Maurice Le' Blanc) ने प्रायः स्वतंत्र रूप में चित्र के विभेदीकरण (Scanning an Image) की प्रविधि खोज निकाली थी, जिसके बिना टेलीविज़न का आविष्कार सम्भव नहीं था। इस प्रविधि में ज़रूरी परिष्कार किए पाल निप्को (Paul Nipkow) ने 1884 में। एक पूर्ण इलेक्ट्रॉनिक स्कैनिंग प्रविधि (Electroning Scansion) के लिए 1923 में रूसी वैज्ञानिक ब्लादीमिर कोज़्मा ज़्वोर्ख़िन (Vladimir

Kozma Zworykhin) के आविष्कार तक इन्तज़ार करना पड़ा। अमेरिका के चार्ल्स फ़्रांसिस जेन्किंस (Charles Frances Jenkin) ने चलचित्र प्रोजेक्टर (Motion Picture Projecter) का आविष्कार करके, चलचित्रों (Motion Picture) को प्रक्षेपित करके प्रसारण व टेलीविज़न प्रणाली के आविष्कार की दिशा में और भी तेज़ी ला दी। इसी बीच रूसी वैज्ञानिक कोंस्ताँतिन पेर्स्की (Constantin Perskyi) ने 1900 में पेरिस-प्रदर्शनी में कुछ चित्रों के प्रसारण के सन्दर्भ में पहली बार 'टेलीविज़न' (Television) शब्द का इस्तेमाल किया था। 'टेलीविज़न' शब्द के 'टेली' का अर्थ है 'दूर'; और 'विज़न' का मतलब होता है 'दृश्य' यानि दूर के दृश्य को देखना। इसलिए भारतीय 'टेलीविज़न' को 'दूरदर्शन' का नाम दिया गया था।

3 अक्टूबर 1922 में चार्ल्स जेन्किंस ने वाशिंगटन में, 'रेडियो फ़िल्मों' के प्रसारण का पहला सार्वजनिक प्रदर्शन किया। लेकिन यह सिर्फ चित्रों का ही प्रसारण प्रदर्शित करके दिखाया था। जेन्किंस को दृश्य-श्रव्य एक-साथ मिलाकर प्रसारित करने में पहली सफलता 13 जून 1923 को मिली थी। उन्होंने तब इसे 'टेलिविज़न' न कहकर 'चित्र और ध्वनि का एक-साथ और एक ही समय के दौरान निरन्तर प्रसारण'(Synchronized Transmission of Picture and Sound) ही कहा था। लगभग दो महिने पूर्व अप्रैल, 1923 में तकरीबन ऐसी ही यान्त्रिक प्रणाली जॉन लॉगी बेयर्ड (John.L.Baird) ने भी निकाली, जो एक तरह का टेलीविज़न का आदिम नमूना था। बेयर्ड ने इसे 'टेलीवाइज़र' (Televisor) का नाम दिया था। लगभग इन्हीं दिनों, 1923 में ही, रूसी वैज्ञानिक ब्लादीमिर ज़्वोर्य़िन ने भी ऐसे ही प्रसारण शैली का परीक्षण किए थे

और वे 1927 के शुरू में इलेक्ट्रॉनिक टेलीविज़न प्रणाली (Electronic Television System) विकसित करने में कामियाब हुए। टेलीविज़न के आविष्कार की दिशा में यह एक क्रान्तिकारी कदम था। लेकिन इलेक्ट्रॉनिक प्रविधि के आविष्कार की श्रेणी में ज़्वोर्ख़िन का नाम दुर्भाग्यवश कहीं उल्लेख नहीं किया गया। सच्चाई यह है कि टेलीविज़न के आविष्कार में जेन्किंस, बेयर्ड और ज़्वोर्ख़िन तीनों वैज्ञानिकों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है।

इसी बीच पहला टेलीविज़न स्टेशन (On Air TV Station) दिसंबर, 1926 में अमेरिका में शुरू हुआ। शुरु में दो घंटे के व्यावसायिक टीवी कार्यक्रमों का प्रसारण शुरू किया था। लेकिन तब इसमें समाचारों का कोई हिस्सा नहीं था, हालाँकि रेडियो पर समाचारों के नियमित प्रसारण को आरम्भ हुए एक दशक से भी ज़्यादा हो चुका था। फिर भी टेलीविज़न पर समाचार प्रसारणों की ओर बिलकुल भी ध्यान नहीं दिया गया। इसमें ज़्यादातर मनोरंजक कार्यक्रम ही होते थे।

बाद में जब व्यावसायिक प्रसारणों में विज्ञापन भी दिए जाने लगे, तो धारावाहिक कहानियों और डाक्यू-ड्रामा के प्रायोजित कार्यक्रमों का भी प्रसारण किया जाने लगा। किन्तु शुरू में टेलीविज़न सेट्स की महँगाई के कारण टेलीविज़न अमीरों की विलासिता का ही प्रतीक रहा था। 1930 तक आते अमेरिका के छोटे-बड़े शहरों, कस्बों में नियमित टेलीविज़न कार्यक्रमों का दैनिक प्रसारण प्रारम्भ हुआ। फिलहाल नियमित 'टीवी न्यूज़' की भी शुरुआत हो गई थी लेकिन समाचारों की गुणवत्ता उतना संतोषजनक नहीं थी। लेकिन धीरे-धीरे 'टीवी न्यूज़' टेलीविज़न प्रसारण की सबसे प्रमुख और

ताकतवर माध्यम ही नहीं, बल्कि सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रभावशाली कार्यक्रम के रूप में आगे आई।

अमेरिका के बाद, 1931 के अन्त तक, ब्रिटेन में टेलीविज़न का व्यावसायिक प्रसारण शुरु हुआ। समाचारों की गुणवत्ता में भी उत्तरोत्तर सुधार आया। एशिया में सबसे पहले जापान में टेलीविज़न के नियमित व्यावसायिक प्रसारणों की शुरुआत हुई। भारत सहित तीसरी दुनिया के विकासशील देशों में टेलीविज़न की शुरुआत, साठ के दशक से पहले नहीं हो सकी। उसकी प्रगति भी इन देशों में बहुत धीमी गति से शुरू हुई। 1946 से रंगीन टेलीविज़न की शुरुआत और नेटवर्क टेलीविज़न का आरम्भ तथा टेलीविज़न सेटों की कीमतों में आयी गिरावट आदि ने टेलीविज़न के गतिरोध धीरे-धीरे दूर किया।

इसी बीच 'टीवी न्यूज़' अपनी पूरी ताकत लेकर उभरकर सामने आने लगा। ख़बरों के संदर्भ में वस्तुनिष्ठता, सबसे पहले और सबसे आगे रहने की होड़ और सटीक विश्लेषण के साथ, एक तरह का प्रोफ़ेशनलिज़्म (पेशेवराना रुख) भी नज़र आने लगा, जिसने टेलीविज़न न्यूज़ की गुणवत्ता का लगातार उत्तरोत्तर विकास किया। धीरे-धीरे ऐसे न्यूज़ बुलेटिनों को तैयार करना शुरू कर दिया, जो ख़बरों में आगे होने के साथ ही 'लाइव' दृश्यों से भी प्रभावशाली बनाए। साथ ही रिपोर्टिंग और एंकरिंग में भी ज़्यादा कौशल दिखाई देने लगा। इतने में अमेरिका में आरसीए, एनबीसी, एबीसी, सीबीएस, एपीटीएन और कोलंबिया ब्रॉडकास्टिंग के बीच संघर्ष चल रहा था। सत्तर के दशक में इन्हें भी 'केबल टेलीविज़न' और 'पे-केबल' से चुनौती मिलने लगी। स्वतंत्र रूप से कार्यक्रम बनानेवालों और 'ग्राहक-सदस्यता टीवी प्रणाली' (Subscription Television)

की लोकप्रियता बढ़ने से बड़ी कम्पनियों का एकाधिकार सत्तर के दशक में टूटने लगा था। इसी बीच अमेरिका में टेड टर्नर ने 1 जून 1980 में शुरू किए गए केबल न्यूज़ नेटवर्क (CNN) ने धीरे-धीरे बाकी सबको पीछे छोड़ दिया। 1982 से CNN ही पहली बार, 24 घंटे न्यूज़ की शुरुआत की थी। ब्रिटेन और यूरोप में, रूपर्ट मर्डोक के स्काई न्यूज़ (Sky News) 24 घंटेवाले न्यूज़ चैनलों और दुनिया-भर के घटनाक्रम की 'लाइव कवरेज' की शुरुआत की। अहिस्ता-अहिस्ता इन के बीच होड़ तेज़ होने लगी। देखा जाए तो, आज उपग्रह टेलीविज़न और केबल नेटवर्क के विश्वव्यापी संजाल ने समूचे ब्रह्मांड को अपनी मुट्ठी में जकड़ लिया है।

दुनिया में रेडियो की शुरुआत के फ़ौरन बाद भारत में भी रेडियो शुरू हो गए थे। लेकिन यूरोप और अमेरिका में टेलीविज़न सबसे प्रमुख जनसंचार माध्यम बनकर उभरने के बाद भी भारत में उसकी शुरुआत नहीं हुई थी। टेलीविज़न जैसी विलासिता की महंगी वस्तु पिछड़े हुए और ग़रीब देश की प्राथमिकताओं में दूर-दूर तक कहीं नहीं थी, लेकिन अन्तरिक्ष विज्ञानी डॉ.विक्रम साराभाई, जो टेलीविज़न को विलासिता की वस्तु न मानकर जनसंचार का सबसे शक्तिशाली माध्यम मानते थे। उनकी दृष्टि में टेलीविज़न विकास और जन-शिक्षण का सबसे असरदार माध्यम था; न कि कोरी मनोरंजन। उनका यह भी मानना था कि, टेलीविज़न एक-साथ 'दृश्य' और 'श्रव्य' माध्यम होने के कारण ज़्यादा विश्वसनीय और प्रमाणिक है।

अमेरिका और ब्रिटेन में टीवी की शुरुआत के लगभग ढाई दशक बाद यानी, 15 सितंबर 1959 को भारत में टेलीविज़न की शुरुआत, एक सार्वजनिक जनसंचार

माध्यम के रूप में किया। पहले से जमे-जमाए रेडियो (आकाशवाणी) के एक छोटे-से विभाग के रूप में इसकी शुरुआत हुई थी। अतः 15 सितंबर, 1959 से लेकर 1972 तक टेलीविज़न के विकास का पहला दौर समाप्त होता है। टेलीविज़न के इतिहास का दूसरा दौर 1973 से लेकर 1982 तक कहा जा सकता है। इसी दौर में 1 अप्रैल, 1976 को रेडियो से अलग होकर टेलीविज़न जनमाध्यम के एक स्वतंत्र विभाग के रूप में कायम हुआ और उसे 'दूरदर्शन' नाम दिया गया। तत्कालीन समय में ही टेलीविज़न 'सादे' (Black and white) से 'रंगीन' (Colour Television) हो गया। इस दूसरे दौर में 'दूरदर्शन' ने फ़िल्मी होना शुरू किया। फ़ीचर फ़िल्मों के प्रसारण और फ़िल्मी गानों के 'चित्रहार' जैसे कार्यक्रमों ने 'दूरदर्शन' के चरित्र को धीरे-धीरे बदल दिया। इस तरह सूचना, शिक्षा और ज्ञान के अपने घोषित उद्देश्यों और विकासमूलक लक्ष्यों को छोड़कर 'दूरदर्शन' व्यावसायीकरण की ओर कदम बढ़ाने लगा। एक जनवरी, 1976 से 'दूरदर्शन' विज्ञापनों का माध्यम बनने लगा था। यहां तक कि 1982 के 'एशियाड' से 'दूरदर्शन' ने प्रायोजित (स्पांसर्ड) कार्यक्रमों की शुरुआत भी की।

दूरदर्शन के इतिहास का तीसरा दौर 1983 से 1992 तक कहा जा सकता है। इस दौर की विशेषता यह थी कि 'इनसेट-1 ए' की असफलता के बाद 30 अगस्त, 1983 को एक दूसरे भारतीय उपग्रह 'इनसेट-1 बी' का प्रक्षेपण किया गया। इससे बम्बई, पूणे और मद्रास के काफ़ी बड़े क्षेत्रों तक दूरदर्शन का प्रसारण संभव हो गया। दूरदर्शन के कार्यक्रमों का प्रसारण पहले से ज़्यादा बढ़ा। शुरू में, प्रतिदिन सुबह 10 बजे से रात 8 बजे तक कार्यक्रमों का प्रसारण होने लगा था। दूरदर्शन के इतिहास का चौथा

दौर 1993 से सन् 2000 तक कहा जा सकता है। इसी दौर 24 घंटे के न्यूज़ चैनलों का विकास हुआ था। सन् 2000 के बाद भारत में टेलीविज़न का परिदृश्य ऐसा बन गया कि इन प्रमुख 24 घंटे के निजी 'न्यूज़ चैनलों' के अलावा और भी अनेक छोटे-बड़े राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय हिन्दी न्यूज़ चैनल धड़ाधड़ आने लगे।

आज दूरदर्शन का पर्याप्त विस्तार हो गया है। खेल, संसद सत्र आदि अन्य के सीधे प्रसारण से दूरदर्शन की महत्ता बढ़ गई है। केबल के प्रचलन में आने से आज टीवी चैनलों की भरमार हो गई है। प्रसारण के बाजारू स्पर्धा में टिकने केलिए दूरदर्शन ने भी अपने कई चैनल खोल लिए हैं। इसके अतिरिक्त टीवी के आज पाँच सौ के ऊपर चैनलें प्रचार में हैं।

1.5.5. डिजिटल या नवीनतम इलेक्ट्रॉनिक मीडिया (मल्टी मीडिया, सी.डी. रॉम तथा इंटरनेट जैसे उच्च तकनीकी माध्यम)

इक्कीसवीं सदी का आरंभ सूचना प्रौद्योगिकी की अभूतपूर्व उद्‌भव के साथ हुआ है। कंप्यूटर तकनीक ने टेलीकम्यूनिकेशन्स के साथ मिलकर जिस नयी तकनीक को जन्म दिया उसे ही इन्फरमेशन टेक्नालॉजी अथवा सूचना प्रौद्योगिकी कहा जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी औद्योगिक क्रांति के बाद की सबसे बड़ी क्रांति मानी जाती है। इस क्रांति के माध्यम से सूचना आज की बदलती दुनिया में ताकत का पर्याय बन गयी है।

आज मल्टी मीडिया, सी.डी. रॉम तथा इंटरनेट जैसे उच्च तकनीकी साधनों द्वारा सूचनाएं तीव्र गति से संप्रेषित की जा सकती हैं। आज इंटरनेट का उपयोग सूचनाओं की

आदान-प्रदान प्रणाली के रूप में बढ़ रहा है। वास्तव में इंटरनेट, समूची दुनिया के कम्प्यूटर का एक विशाल संजाल है, जो आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

इंटरनेट मूलतः सूचनाओं व संदेशों का प्रवाह है। भौगोलिक सीमाओं से मुक्त रहने के कारण इन सूचनाओं व संदेशों की पहुँच कम समय में बहुत व्यापक हो जाती है। ई-मेल से लेकर ई-प्रशासन, ई-कामर्स, ई-स्कूल, टेली मेडीसिन, विश्वव्यापी वेब आदि इंटरनेट की सुविधाएं हैं।

नयी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी पूर्व प्रचलित जनसंचार माध्यमों (जैसे-प्रिंट मीडिया, रेडियो, टेलीविज़न तथा सिनेमा आदि) की तरह समाज के बीच एक पुल की तरह काम कर रहा है। यह सभी तरह की सूचनाओं को पारदर्शी ढंग से उपलब्ध करा सकता है। आज सूचना-समाज की सबसे बडी आर्थिक ताकत है इंटरनेट। लेकिन इसे जनसंचार माध्यम बनने में समय लगेगा। इसने भौगोलिक सीमाएँ तो तोड़ दी हैं लेकिन विश्व स्तर पर इसे फैलने में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

नये इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को विकासशील देशों में जनसंचार माध्यम के रूप में स्वीकार करने से पूर्व यह भी विचार किया जाना चाहिए कि विश्व के बहुसंख्यक निर्धन समाज के हैं इनके लिए यह कैसे उपयोगी बनाया जा सकता है। उच्च शिक्षितों तथा कम पढ़े लिखे अथवा निरक्षरों के बीच नये इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के कारण सामाजिक वैषम्य की खाई न बढ़े, इसके उपाय को भी खोजे जाने चाहिए। इस दिशा में जनप्रसारण माध्यम रेडियो तथा टेलीविज़न विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, खासकर रेडियो जैसा त्वरित तथा सस्ता माध्यम। इस तरह नये इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से लक्षित समाज के सभी वर्गों

को लाभान्वित किया जा सकता है। इस प्रकार संपूर्ण विश्व की मानवता के कल्याण की दृष्टि से आधुनिक जनसंचार माध्यमों के कर्मियों का उत्तरदायित्व इक्कीसवीं सदी में अधिक बढ़ गया है ।

1.6. वर्तमान परिदृश्य में मीडिया

समकालीन परिवेश में हमारे प्रतिदिन के जीवन चक्र में और लगभग सभी क्षेत्रों में मीडिया का हस्तक्षेप बहुत बढ़ गया है। प्रेस केवल साक्षर जगत का साधन बन सका तो, दूसरी ओर रेडियो श्रव्य साधन के रूप में अधिक प्रचलित हुआ। दूरदर्शन ने प्रेस एवं रेडियो दोनों का समन्वय करके श्रव्य एवं दृश्य साधन के रूप में शिक्षित एवं अशिक्षित या साक्षर एवं निरक्षर दोनों के लिए जनसंचार एवं मनोरंजन का साधन बन गया है ।

मानव के आर्थिक स्थिति को सधुारने में सचूना प्रौद्योगिकी का स्थान नकारा नहीं जा सकता। खासकर दृश्य-श्रव्य माध्यमों का, जिसके कारण कृषि और उद्योग में हुए सुधार ने, सामाजिक और आर्थिक विकास को प्रभावित किया। दूसरी ओर से देखे तो, मीडिया गरीबी तथा अज्ञान से लड़ने का शक्तिशाली औज़ार भी रहा है।

आज टीवी चैनलों की भरमार हो रही है। प्रसारण के बाज़ारू स्पर्धा में टिकने केलिए चैनलें विविधता में उतर आयीं हैं। साथ ही टी.वी चैनलों ने गरीब और दुर्बल वर्गों हेतु सामाजिक कल्याण के उपायों पर बल देने और राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित करने तथा सामाजिक परिवर्तन में प्रेरक भूमिका अदा करने से भी पीछे नहीं हटा। जन सामान्य में वैज्ञानिक चेतना का विकास करने में भी चैनलों का स्थान अद्वितीय रहा है।

सूचना हो या संदेश जनता तक मीडिया समय-समय पर पहुँचाती हैं। जैसे कि परिवार कल्याण और जनसंख्या नियंत्रण करने के संदेश प्रसारित करना, पर्यावरण को संतुलित रखने केलिए जन सामान्य में जागरूकता लाना, कृषि उत्पादन को प्रोत्साहित कर हरित क्रान्ति और पशुपालन को बढ़ावा देकर श्वेत क्रांन्ति के लिए भी जनता को प्रेरित करना भी मीडिया ने अपना दायित्व-सा समझ लिया है। साथ ही लोगों को सूचना, शिक्षा एवं मनोरंजन प्रदान करना और खेल कूद को लोक प्रिय बनाने में भी मीडिया का ही हाथ है।

1.7. मीडिया के बदलते आयाम

आज के ज़माने में मीडिया का मतलब है वक्त की रफ्तार से निरंतर मुकाबला। यहाँ हर बीतता लम्हा एक चुनौती है। कुछ क्षणों की देरी से खबरें अप्रासंगिक और बासी हो जाती हैं। जितनी बड़ी चुनौती रफ्तार की है, उससे भी बड़ी चुनौती विश्वसनीयता बनाए रखने की है। जल्दबाजी में गलत खबर न चली जाए, इसका भी ध्यान रखने की जरूरत है।

लेकिन सोशल मीडिया की चुनौती अलग है। फेसबुक और ट्विट्टर ने खबरों के संदर्भ और प्रकृति को बदला है। सोशल मीडिया पर ट्रेंड बननेवाली खबरें आज न्यूज़ रूम की दिशा को बदल रही हैं। बढ़ती गलाकाट प्रतिस्पर्धा ने इस चुनौती को और गंभीर बना दिया है। पहले तो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की ब्रेकिंग खबरें सोशल मीडिया में ट्रेंड बनती थीं। मगर अब सोशल मीडिया पर वायरल हुई खबरें न्यूज़ रूम को प्रभावित

करती हैं। हर पत्रकार अब ताजा घटनाक्रमों की जानकारी केलिए फेसबुक, ट्विट्टर आदि पर ही नजरें गडाए रहता है।

दूसरी ओर टी.वी. चैनलों की न्यूज़ ने अखबारों को फीका बना दिया है। सुबह छपनेवाली खबरें फिर भी लोगों को पहले ही मिल जाती हैं। लेकिन न्यूज़ मैगजीन तो सबसे ज्यादा परेशानी में हैं। ये न्यूज़ चैनल की रफ़्तार का मुकाबला नहीं कर पातीं। वहीं टी.वी. के सामने सबसे बड़ी चुनौती डिस्ट्रीब्यूशन का चक्रव्यूह है साथ ही साथ न्यूज़ चैनल की टी.आर.पी. यानी दर्शक संख्या की भी है। अगर चैनल दिखेगा ही नहीं तो टी.आर.पी कहाँ से आएगी और अगर टी.आर.पी. नहीं आई तो विज्ञापन कहाँ से मिलेगा। इसलिए टी.वी. चैनल्स खासकर न्यूज़ चैनल अपनी टी.आर.पी बढ़ाने की कार्यों को करते ही रहते हैं। वह चाहे नैतिक हो या अनैतिक। मगर डिस्ट्रीब्यूशन के इस चक्रव्यूह को तोड़ पाना इतना भी आसान नहीं है। दिनोदिन चैनलों के डिस्ट्रीब्यूशन के इस चक्रव्यूह की लागत भी तेजी से बढ़ती जा रही है। चैनल जो कुछ करते हैं, रेटिंग केलिए करते हैं। दिन भर क्रिकेट दिखाते हैं। क्राइम दिखाते हैं। सेंसेशनल खबरें दिखाते हैं। कई आदमी रेलवे एक्सीडेंट से मर रहा हो तो उसके मुँह में माइक डालकर पूछते है कि आपको कैसा लग रहा है? इसलिए कहा जाता है कि टी.वी मीडिया सेंसेशनल हो गया है।

1.8. निष्कर्ष

भारत इस समय मीडिया क्रान्ति से गुज़र रही है। 'मीडिया' शब्द भले ही नया हो, किन्तु भारत में जनसंचार की अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय पौराणिक साहित्य

से इसकी शुरुआत देखी जा सकती है। इतिहास की ओर देखे तो मौर्यकाल से संदेश भेजने की विविध प्रविधि हमें मिलती हैं। मीडिया एक समग्र तंत्र है जिसमें प्रिंटिंग प्रेस, इलेक्ट्रॉनिक माध्यम, रेडियो, सिनेमा, इंटरनेट आदि शामिल है। वर्तमान समय तक आते मीडिया की उपयोगिता, महत्त्व एवं भूमिका में बदलाव आने लगा। परिणाम स्वरूप आज कोई भी मीडिया की उपेक्षा कर आगे नहीं बढ़ सकता।

अध्याय : दो

अस्स्योत्तर हिंदी कहानी की यात्रा

2.1 अवधारणा

हिंदी-साहित्य की सभी विधाओं में 'कहानी' सबसे पुरानी विधा है। यह पुराने काल से जनजीवन के बीच बोली, सुनी और लिखी जानेवाली लोकप्रिय विधा रही है। कहानियों का प्रारंभ ऋग्वेद से माना जाता है। इसमें कहानी के सभी तत्व विद्यमान रहे हैं। आगे चलकर ब्राह्मण ग्रन्थों में उपनिषदों, पुराणों और जातकों में कहानियाँ मिलती हैं। प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में भी कथा साहित्य का लिखित और मौलिक क्रम मिलता रहा। नाथपंथियों और सिद्धों के उपदेश भी कथाओं के माध्यम से प्रभावित होते थे।

हिंदी साहित्य के क्रमिक विकास के पूर्व कथा साहित्य में नीति, धर्म एवं सदाचार का प्रतिपादन किया जाता था। कालक्रम एवं परिस्थितियों के अनुसार इसका स्वरूप बदलता गया। आज साहित्य में 'कहानी' सबसे आगे अपना स्थान बना चुकी है।

2.2 उत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा

धरती पर आधुनिक मानव के विकास के साथ कालांतर में कहानियों का भी जन्म हुआ है। जब मनुष्यों ने स्थायी रूप से रहना प्रारंभ कर दिया तब गाँव व परिवार बने। इसी स्थायित्व ने भाषा के विकास को बल दिया। वहीं से लेखन परंपरा की भी शुरुआत होने लगी। जैसे-जैसे मनुष्य कार्यशील होता गया, वैसे कहानियों के किस्से भी शुरू हो गये।

जहाँ तक हिंदी में कहानी लेखन के विकास की बात है, हमारे देश में कहानियों की लंबी और सम्पन्न परंपरा रही है। प्राचीनकाल से सदियों तक वीरों तथा राजाओं के शौर्य, प्रेम, न्याय, ज्ञान, वैराग्य, साहस, आदि की प्रचलित कथाएँ, जिनकी कहानियाँ

घटनाओं पर आधारित हुआ करती थीं, वे कहानी के ही रूप हैं। वेदों, उपनिषदों तथा पुराणों में वर्णित 'पुरूरवा-उर्वशी', 'नहुष', 'ययाति', 'शकुन्तला' जैसे आख्यान कहानी के ही प्राचीन रूप हैं।

'कहानी' का मूल अर्थ 'कथा' है। प्राकृत और अपभ्रंश में कहानी ने 'कहा' का रूप लिया। गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'कहानी' का उल्लेख किया है, जैसे 'साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान।' भोजपुरी में आज भी 'कहानी' शब्द का ही प्रयोग होता है। अंग्रेज़ी में इसे 'शॉर्ट स्टोरी' कहते हैं, बंगला में 'गल्प' मराठी में 'लघुकथा' और हिंदी में 'कहानी' आदि नाम इसके लिए प्रचलित है।

विद्वानों ने अनेक प्रकार से कहानी को परिभाषित करने का प्रयास किया है। अमेरिका के आलोचक एडगर एलिन पो के अनुसार, ''कहानी वह छोटी आख्यानात्मक रचना है, जिसे एक बैठक में पढ़ा जा सके, जो पाठक पर एक समन्वित प्रभाव उत्पन्न करने के लिये लिखी गई हो, जिसमें उस प्रभाव को उत्पन्न करने में सहायक तत्वों के अतिरिक्त और कुछ न हो और जो अपने आप में पूर्ण हो।''[9] भारतीय कथाकार मुंशी प्रेमचंद के अनुसार ''कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से परिपूर्ण कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।''[10]

[9] https://hi.wikipedia.org/wiki/कहानी

[10] https://hi.wikipedia.org/wiki/कहानी

2.3 हिंदी कहानी का प्रारंभ

हिंदी कहानियों का श्रीगणेश वीरगाथाकाल से प्राप्त होता है। वीरों की कथाएँ गीतों में पायी जाती थीं। इन वीरगाथाओं को जनता पद्य के माध्यम से सुनती और कहती थी। आगे चलकर इसमें प्रेम कथाओं का समावेश होने लगा और धीरे-धीरे सूफी कवियों ने इन्हें प्रेम कथाओं के रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। भक्तिकाल में लेखकों ने अनेक भक्तों की कथाओं का संग्रह किया, जिनमें ''चौरासी वैष्णवों की वार्ता'' तथा ''दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता''अधिक प्रसिद्ध हई।

खड़ीबोली में गद्य रचना सन् 1800 से प्रारंभ होती है। हिंदी गद्य के प्रवर्तकों में लल्लूलाल और सदल मिश्र ने उस समय संस्कृत कथाओं के आधार पर कहानियाँ लिखना प्रारंभ किया था। लल्लूलाल की प्रमुख रचनाऐं रही हैं, 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैतास पच्चीसी', 'माधवानल', 'काम कला', 'शकुन्तला', 'प्रेम सागर' आदि। 'नासिकेतोपाख्यान' सदल मिश्र की रचनाओं में प्रमुख रही हैं। इसी समय इंशाअल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' लिखी तथा राजा शिवप्रसाद ने 'राजा भोज का सपना' लिखी। विद्वान द्वारा इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' को हिंदी की प्रथम एवं मैलिक कहानी के रूप में स्वीकारा है।

सन् 1900 में 'सरस्वती' के प्रकाशन के साथ आधुनिक कहानियों का जन्म माना जा सकता है। इस दौर में अनेक लेखकों के आर्विभाव हुए, जिससे हिंदी कहानियों के आधुनिक विकास के बारे में पता चलता है। इसकी शुरुआत प्रेमचंद से होती है। प्रेमचंद के आगमन से हिंदी कथा-साहित्य की दिशा 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की ओर

मुड़ गई, वहीं प्रसाद के आने से वह 'रोमांटिक यथार्थवाद' की ओर मुड़ी। सन् 1922 में हिंदी कथा-साहित्य में 'उग्र' का प्रवेश हुआ तो वे न प्रसाद की तरह रोमैंटिक थे और न ही प्रेमचंद की भाँति आदर्शोन्मुख यर्थावादी, वे केवल यथार्थवादी थे। उन्होंने प्रकृति से समाज के नंगे यथार्थ को सशक्त भाषा-शैली में उजागर किया।

1927 और 1928 के आसपास जैनेन्द्र ने कहानी लिखना प्रारंभ किया। उनके आगमन के साथ ही हिंदी कहानी में नए युग का प्रारंभ हुआ। 1936 तक 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हो चुकी थी। राष्ट्रीय संग्राम के सक्रिय क्रांतिकारी कार्यकर्ता यशपालजी की कहानियों में उसका सीधा प्रभाव देखा जा सकता है। अज्ञेय के आगमन के साथ कहानी नई दिशा की ओर मुड़ी। जिस आधुनिकता बोध की बात हम कहते हैं उसका श्रेय अज्ञेय को ही जाता है।

सन् 1950 के आसपास से हिंदी कहानियों की गति नए दौर से गुजरने लगीं। अब तो कहानी अत्यंत लोकप्रिय हो चुकी है और प्रत्येक पत्र-पत्रिकाओं में इनकी उपस्थिति अनिवार्य हो चुकी है। और तो और टेक्नोलॉजी के विकास से सोशल मीडिया में भी इसे पढ़े जा सकते हैं। अब तो इन कहानियों पर आधारित चलचित्र भी बनने लगे हैं जिन्हें दर्शक बड़े शौक से सिनेमाघरों में देखते हैं। आज के परिदृश्य की बात की जाए तो अब कहानियों में आधुनिकता का समावेश हो गया है, जिसमें विज्ञान कथा, सामाजिक संदेश, धर्म, राजनीति, रहस्य, शौर्य, बलिदान, त्याग आदि शामिल हो गई हैं। लेकिन कहानी सदियों तक एक अनवरत चलनेवाली प्रक्रिया है जिसमें कालांतर में समयानुकूल बदलाव होते रहेंगे और इसके विकास को एक नया आयाम मिलता रहेगा।

देखा जाए तो, पहले कहानी का उद्देश्य उपदेश देना और मनोरंजन करना था तो, आज इसका लक्ष्य मानव-जीवन की विभिन्न समस्याओं और संवेदनाओं को व्यक्त करना है। सन् 1900 के आगे का दशक कहानी की उपलब्धियों की दृष्टि से उल्लेखनीय माना जा सकता है। माधव राव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901), भगवान दास की 'प्लेग की चुड़ैल' (1902), पं. गिरिजा दत्त वाजेपयी की 'पंडित और पंडितानी', आचार्य रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903), लाला पार्वती नंदन की 'बिजली' (1904), 'मेरी चंपा' (1905) और बंगमहिला की 'दुलाई वाली' (1907) आदि कहानियाँ इस काल की कहानी के प्रति कुछ सामान्य निष्कर्ष निकालने की सुविधा देती है। इसी दशक के अंत में वृन्दावन लाल वर्मा की भी दो कहानियाँ 'सरस्वती' में प्रकाशित होती हैं - 'राखीबन्द भाई' और 'तातार और एक वीर राजपूत'। वस्तुतः यह दौर एक ओर कहानी की अस्तित्व की लड़ाई का है तो दूसरी ओर उसकी प्रतिष्ठा का संघर्ष रहा है।

प्रसाद जी आधुनिक समस्याओं का निरूपण करने में अत्यंत कुशल रहे हैं। इनके 'प्रेम-पथिक' का प्रकाशन इसी समय में हुआ और इसी दौर में ही 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'इन्द्रजाल' जैसी रचनाएँ प्रकाशित हुई। प्रसाद की कहानियों की कथावस्तु हमेशा कौतुहलपूर्ण, संस्कृत प्रधान तथा भावात्मक होती है। हिंदी कहानी के मंच पर प्रसाद का प्रवेश और उनका आरम्भिक रचनात्मक सक्रियता इस शताब्दी के दूसरे दशक की एक ऐतिहासिक घटना है। इस काल में सक्रिय रहे अन्य लेखक हैं विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, राजा राधिकारमण सिंह, पण्डित ज्वाला दत्त शर्मा, सुदर्शन आदि। वैसे

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' हिंदी की पहली कहानी है, जो शिल्प विधान की दृष्टि से हिंदी कहानी जगत को प्रौढ़ बना दिया है।

2.4 प्रेमचंद और उनका समय

हिंदी कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद का आना क्रान्ति से कम नहीं था। यह वह समय था जबकि हिंदी कहानी अपनी पूरी शक्ति और गौरव के साथ आगे आ रही थी। इस दौर में किशोरीलाल गोस्वामी, माधवराव सप्रे, बंगमहिला तथा आचार्य शुक्ल आदि कहानी के क्षेत्र में विराजमान थे। प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं के ज़रिए साधारण जनता के करुण जीवन के यथार्थ को चित्रित करने का प्रयास किया है। अर्थात् प्रेमचंद ने हिंदी कहानियों के उद्देश्य व दृष्टिकोण में परिवर्तन किया तथा विषय-वस्तु में व्यापक विस्तार लाया। प्रेमचंद के पूर्व कहानियाँ आदर्शवादी उद्देश्य को समाहित करती थी। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों की शुरुआत आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद से की और लेखन के अंतिम दौर में चरम यथार्थवाद की स्थापना की। इसके अलावा प्रेमचंद पूर्व कहानियाँ कुछ विषयों तक ही सीमित थीं लेकिन प्रेमचंद ने हिंदी कहानियों में विषय वैविध्य को स्थापित करने का सफल प्रयास किया। जैसे, 'पूस की रात' में किसानों की समस्या, 'बूढ़ी काकी' में वृद्धों की समस्या, 'दूध का दाम' दलित समस्या, 'कफन' गरीबी की समस्या, 'नया विवाह' में महिलाओं की समस्या आदि। प्रेमचंद ने ऐसी तमाम कहानियाँ भी लिखी थीं, जिनमें भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अक्स तथा अँग्रेजों के खिलाफ जनता की पीड़ा, गुस्सा और प्रतिकार साफ देखा जा सकता है। निस्सन्देह वे अपने समय का प्रामाणिक और सच्चा दस्तावेज हैं।

हालाँकि प्रेमचंद के समय में ही सक्रिय रूप से कथा-लेखन कर रहे प्रसाद, निराला, सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', चतुरसेन, जी.पी.श्रीवास्तव राजा राधिकारमण सिंह, राय कृष्णदास, सियारामशरण गुप्त, चण्डीप्रसाद 'हृदयेश', भगवती प्रसाद वाजपेयी, ज्वालादत्त शर्मा, गोविन्द वल्लभ पन्त और उन्हीं दिनों नये-नये उभरे कथालेखक राधाकृष्ण का नाम भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। खास बात यह है कि ये सभी लेखक अपने-अपने खास ढंग और शैलियों से हिंदी कहानी को अनेक तरह से समृद्ध कर रहे थे। और सच में यही वह दौर है, जब हिंदी कहानी में विकास और अभिव्यक्ति के नये-नये रास्ते खोजने की चिन्ता शुरू हुई।

जाहिर है इन लेखकों ने प्रेमचंद से कुछ भिन्न रास्ता लिया था। जिस समय प्रेमचंद यथार्थ के जरिये कहानी को साध रहे थे, उस समय उनके समकालीन लेखकों में बहुत सशक्त कथाकार प्रसाद 'गुण्डा', 'ममता', 'आकाशदीप', 'मधुआ', 'पुरस्कार' जैसी कहानियों के जरिये मानव-चरित्र की अद्‌भुत सम्भावनाओं का उत्खनन कर रहे थे। प्रसाद की तरह निराला ने भी कहानियाँ लिखीं और उनमें कई तो बेजोड़ हैं। कल्पनाशीलता के गहरे रंगों के सहारे कुछ-कुछ काव्यात्मक भाषा में निराला भी अपनी कहानियों में जीवन चरित्रों और उनके साथ घटी विडम्बनाओं को दर्शाते हैं।

प्रेमचंद की धारा में लिखनेवाले उनके समकालीन लेखकों में विश्वंभर शर्मा कौशिक और सुदर्शन के नाम उल्लेखनीय हैं। सुदर्शन अपने ऐतिहासिक महत्त्व की कहानी 'हार की जीत' तथा 'कवि की स्त्री' और विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक',

'रक्षाबन्धन' और 'ताई' जैसी कहानियों के जरिये अपने-अपने ढंग से कहानी को ऊँचाई देने की समर्थ और प्रबल कोशिशें कर रहे थे।

दूसरी ओर 'कानों में कंगना' जैसी भावपूर्ण कहानी के लेखक राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह कहानियों की एक भिन्न किस्म की सुसंस्कृत परम्परा की नींव रख रहे थे। इस समय उभरे अन्य लेखकों में बहुत ही समर्थ लेखक रहे थे राधाकृष्ण। प्रेमचंद ने न सिर्फ 'हंस' में उनकी कहानियाँ छापी थीं, बल्कि उन्हें बहुत आग्रह के साथ आनेवाले समय का एक महत्त्वपूर्ण लेखक घोषित किया था।

प्रेमचंद को समकालीन यथार्थ की गहरी पकड़ थी। सामाजिक क्षेत्र में उस समय सामंतवाद और महाजनी सभ्यता का संघर्ष चल रहा था। देश की संपत्ति राजों, महाराजों, सामंतों के हाथों से निकल कर शहरों के उद्योगपतियों के हाथों में आने लगी थी। इन सबके बीच छोटे-छोटे साहूकारों और ऋणदाताओं के रूप में महाजनी सभ्यता की अपशक्तियां देहात में फैल रही थीं, और वे किसानों के खून चूस रहे थे। इसके अतिरिक्त धर्म व रूढ़िवादी-अंधविश्वास ने भी किसानों के शोषण कर रहा था, जिसका व्यक्त चित्रण उनकी कहानियों में देखी जा सकती हैं। किसान वर्ग के साथ-साथ मध्यवर्ग की भी समस्या को दिखाने में भी प्रेमचंद नहीं भूले।

प्रेमचंद का कथा-संसार समकालीन सत्यों से निर्मित है। प्रेमचंद ने यों तो बहुत सी कहानियां लिखी हैं जिसमें अर्थ का दबाव लगभग सारी सामाजिक कहानियों में देखा जा सकता है। 'पंच-परमेश्वर' में अर्थ के कारण दो मित्रों के संबंधों में तनाव पैदा होता है जो भावात्मक मूल्यों को आहत करता है। इसी प्रकार 'बूढ़ी काकी' में बूढ़ी काकी और

बुद्धिराम के संबंध में अर्थ के कारण तनाव पैदा होता है। अर्थ ही 'आत्माराम', 'पूस की रात', 'कफन', 'बड़े घर की बेटी', 'ईदगाह', 'नमक का दारोगा', 'मंत्र' आदि सभी कहानियों में परिवार और समाज के व्यक्तियों तथा वर्गों के भावात्मक और मानवीय संबंधों को आहत करती है। 'कफन' में अर्थ का दबाव पति-पत्नि, बाप-बेटे के भावात्मक संबंधों को ही नहीं कुचलता है बल्कि समाज में प्रचलित नैतिकतावादी धारणाओं का भी मजाक उड़ाता है। 'मंत्र' में अर्थ ही डॉक्टर चड्ढा को अमानवीय बना देता है और उनके इस अमानवीय व्यवहार के परिणाम स्वरूप एक गरीब ग्रामीण के बेटे की मौत हो जाती है। 'ईदगाह' में इसी अर्थवैषम्य को लेखक ने मुसलमानों के एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण धर्मिक पर्व के परिवेश में उभारा है और कहना चाहा है कि किस प्रकार शुद्ध धार्मिकता, अर्थ की सापेक्षता में देखने की, अनुभव करने की वृत्ति हो रही है।

प्रेमचंद की कहानियों के इस अर्थमूलक संसार में अनेक तरह के पात्र हैं और उनके माध्यम से उन्होंने अनेक तरह की समस्याओं को भी दिखाया है। इस दुनिया में पूंजीवादी हैं, सरकारी कर्मचारी हैं, वकील हैं, जज हैं, जमींदार हैं, किसान हैं, मजदूर हैं, टूटते हुए रईस हैं, तरह-तरह की स्त्रियां हैं जैसे माताएं हैं, बहनें हैं, बेटियां हैं, प्रेमिकाएं हैं, विधवाएं हैं, दुःख भोगती वृद्धाएं हैं, मज़दूर स्त्रियां हैं, निकम्मी मध्यवर्गीय रमणियां हैं, सामाजिक अन्याय से उत्पन्न वेश्याएं हैं।

वास्तव में प्रेमचंद की दुनिया हमेशा अन्य हिंदी कथाकारों की दुनिया से अधिक वैविध्यपूर्ण और जीवंत रहा है। वे भारतीय उच्च मानव-मूल्यों के समर्थक रहे हैं जिनमें

प्रेम, सहानुभूति, त्याग, करुणा आदि को उच्च स्थान दिया गया है और उनका यही मानना है कि, इन्हीं के अवलंबन से ही मानवीय समस्याओं का वास्तविक समाधान किया जा सकता है।

2.5 प्रेमचंदोत्तर हिंदी कहानी

प्रेमचंद के निधन के पूर्व ही हिंदी कहानी में परिवर्तन का संकेत मिलने लगे थे। उनके अन्तिम दौर की कहानियों में पात्रों की मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता और समय के साथ चलने की प्रेमचंद की इच्छा व्यक्त हो जाती है। प्रेमचंदोत्तर कहानीकारों में जैनेन्द्र, अज्ञेय और यशपाल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कहानीकार माने जाते हैं। इनके अलावा उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव, भैरव प्रसाद गुप्त तथा चन्द्रकिरण सौनरेक्सा का नाम भी उल्लेखनीय है।

जैनेन्द्र व अज्ञेय ने व्यक्तिवादी मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी जो तत्कालीन समय-संदर्भों से प्रभावित थीं। दूसरी ओर यशपाल मार्क्सवादी होने के बावजूद व्यक्तिगत मनोभावों को केन्द्र में रख कर कहानियाँ लिखना शुरू की थी। उनका लक्ष्य एक शोषण रहित समतामूलक समाज की स्थापना था। उन्होंने भारतीय समाज में स्त्री की दयनीय स्थिति पर अपने को विशेष रूप से केन्द्रित किया। जैनेन्द्र की कहानी में तत्कालीन राजनीतिक परिवेश का प्रभाव व्यक्त रूप से दिखाई देता है। उनके आरंभिक कहानी-संग्रहों में 'फाँसी', 'गदर के बाद', 'जय सन्धि', 'एक कैदी', 'निर्मम स्पर्धा' जैसी कहानियाँ क्रान्ति व देशभक्ति की भावनाओं के आवेग के कारण बहुतों का ध्यान खींची। ये कहानियाँ वास्तविक और यथार्थ जीवन की अपेक्षा अवास्तविक और अमूर्त जीवन का

वर्णन अधिक मिलता है। इसी वजह से उनकी कहानियाँ वास्तविक जीवन से दूर महसूस होती हैं। अपने दौर में जैनेन्द्र ने प्रतीकात्मक कहानियाँ ही लिखीं हैं। 'दो चिड़ियाँ', 'बाहुबली', 'तत्सम', 'लाल सरोवर' और 'नीलम देश की राजकन्या' आदि इसी प्रकार की प्रतीकात्मक कहानियाँ हैं। इन कहानियों में विचारों को व्यक्त करने का माध्यम पशु-पक्षी है। मनुष्य इन कहानियों में अस्पष्ट और अमूर्त छाया के समान है। इस सन्दर्भ में 'मास्टर जी', 'घुँघरू', 'ग्रामोफोन का रिकॉर्ड', 'जाह्नवी', 'दृष्टि-दोष', 'ब्याह' 'मामी' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। उनकी कहानियाँ एक ओर घर-परिवार से घेरे हैं तो दूसरी ओर प्रेम से पूर्ण हैं। यह प्रेम, मानव प्रेम या जीव प्रेम है जो, जैनेन्द्र की कहानियों का नाभिकेन्द्र है। और यही प्रेम धीरे-धीरे उनकी पूरी कहानी में व्याप्त है।

प्रेमचन्दोत्तर हिंदी कहानीकारों में यशपाल का नाम भी महत्त्वपूर्ण है। यशपाल की कहानियों का पहला संग्रह 'पिंजरे की उड़ान' सन् 1939 में प्रकाशित हुआ। ये कहानियाँ सन् 1934 और 1938 के बीच जेल में लिखी गयी थीं। जेल में रहते हुए लिखी इन कहानियों में विशेष प्रकार की मनःस्थिति दृश्यमान है। इन्होंने अपनी रचना में अधिकतर मध्यवर्ग को स्थान दिया। 'गवाही', 'चार आने', 'सोमा का साहस' आदि कहानियों में मध्यवर्ग का सजीव चित्रण दिखाई देता है। 'एक राज' और 'गुडवाई दर्द दिल' आदि कहानियों में समाज के श्रमजीवी वर्ग, नौकर, रिक्शावाला आदि के प्रति हो रहे अत्याचार को पाठकों के सामने रखे हैं। अतः यशपाल जी की कहानियों में जीवन्त समस्याओं का चित्रण हमेशा दृश्यमान है। 'ज्ञानदान', 'अभिशप्त', 'तर्क का तूफान', 'भस्मावृत चिनगारी', 'वो दुनिया', 'फूलो का कुर्ता', 'धर्मयुद्ध', 'उत्तराधिकारी' आदि

उनके कहानी-संग्रह हैं। यशपाल की कहानियों के सन्दर्भ में निजी जीवन की जिस हिस्से की बात कही गयी है वह 'नयी कहानी' के आन्दोलन के संदर्भ में अनुभव किया जा सकता है। सन् 1976 में उनकी मृत्यु हो गयी।

प्रेमचन्दोत्तर कहानिकारों की श्रृंखला में 'उपेन्द्रनाथ अश्क' पंजाबी और उर्दू की पृष्ठभूमि के साथ आये। 'कांगड़ा का तेली' जैसी यथार्थवादी कहानी से उनकी पहचान बनी। 'डाची' और 'अंकुर' उनकी चर्चित कहानियाँ रही। युगीन चेतनाओं से हटकर उन्होंने व्यक्तिगत कुंठाओं पर अधिक बल दिया था। 'बेबसी', 'पलँग', 'ठहराव' आदि कहानियाँ इसका उदाहरण है।

विष्णु प्रभाकर के समय आते उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर कहानियाँ लिखना शुरू किया। जैसे 'कितना झूठ', 'सुराज' और 'ताँगे वाला'। स्त्री पात्रों की गरिमा एवं प्रतिष्ठा प्रदान करने में भी वे नहीं भूले। 'हिमालय की बेटी', 'चाची', 'मारिया' जैसी कहानियाँ उसका उदाहरण है। टूटते हुए नैतिक मूल्यों पर भी अपनी कहानियों के द्वारा ध्यान आकृष्ट करने की उन्होंने कोशिश की है। 'धरती अब भी घूम रही है', 'ठेका', 'कितने जेबकतरे' आदि इसी श्रेणी की कहानियाँ है।

इसी दौर के अन्य प्रगतिवादी कहानीकार रहे हैं अमृतलाल नागर, रांगेय राघव, अमृतराय, भैरव प्रसाद गुप्त आदि। प्रेमचंद और यशपाल के बाद मुस्लिम पात्रों को केन्द्र में रखकर अमृतलाल नागर ने मध्यवर्ग से जुड़ी हुई कहानियाँ लिखीं। नागर जी की कहानियों में 'बतरस' का तत्त्व उनका मूल वैशिष्ट्य है। अपनी कहानियों में उन्होंने टूटते हुए नैतिक मूल्यों, मूल्यविहीन राजनीति और उपभोक्ता संस्कृति की विकृतियों का स्पष्ट

चित्रण किया है। 'लंगूर का बच्चा', 'दो आस्थाएँ', 'मरघट के कुत्ते', 'तुलाराम शास्त्री', 'मल्का टूरिया का बेटा', 'मोती की सात चलनियाँ', 'जुएँ' आदि कहानियों में हास्य व्यंग्य के पुट मिलते हैं।

अमृतराय की अधिकतर कहानियाँ सामजिक विसंगतियों को केन्द्र में रखकर लिखी गयी हैं। उनकी कहानियों में निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति तथा उनके साथ हो रहे अन्याय के प्रति आक्रोश की झलक मिलती है। जैसे कि, 'आह्वान', 'समय', 'चित्र फलक' आदि उनकी महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं। रांगेय राघव की कहानियाँ देश की एक सच्ची तस्वीर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। उनकी कहानियों में 'बंगाल का अकाल', देश-विभाजन, साम्प्रदायिक विद्वेष, बेरोजगारी और भुखमरी आदि का मिला-जुला रूप देखने को मिलता है। 'गदल', 'मृगतृष्णा', 'कुत्ते की दुम और शैतान', 'बाप का दोस्त', 'धूल की आँधी', 'उपचेतना का ताण्डव', 'यह ग्वालियर है' आदि उनकी उल्लेखनीय कहानियाँ हैं।

भैरव प्रसाद गुप्त ने प्रेमचंद की तरह ग्रामीण और शहरी परिवेश पर समान रूप से कहानियाँ लिखीं है। स्वाधीनता के बाद आम आदमी के अभावों व मोहभंग को उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से उकेरा है। 'सपने का अन्त', 'सिविल लाइन का कमरा', 'फँदा', इन्सान और मक्खियाँ, ऐसी आजादी रोज-रोज हो, चाय का प्याला आदि उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

चन्द्रकिरण सोनरेक्सा ने मध्यवर्गीय समाज को अपनी कहानी का हिस्सा बनाया। उन्होंने अपनी रचनाओं के ज़रिए समाज में व्याप्त नकारात्मक स्थितियों के

खिलाफ आवाज़ उठाने का प्रयास किया। उनकी कहानियों में 'आदमखोर', 'नासमझ', 'कवयित्री', 'बर्थडे', 'आत्महंता', 'साइकिल' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। इस तरह प्रेमचंदोत्तर कहानियों में समाज, साहित्य और राजनीति के क्षेत्र में आये रचनात्मक परिवर्तन ने आगे चलकर कई कहानी आन्दोलनों को जन्म दिया।

2.6 कहानी आंदोलन

प्रेमचंद-प्रसादोत्तर कहानी के पश्चात् हिंदी कहानी के परिदृश्य पर एक के बाद एक होकर कई कहानी आंदोलनों का जन्म हुआ। कहानी आंदोलनों का सिलसिला नई कहानी आंदोलन से शुरू हुआ और जनवादी कहानी इसकी अंतिम कड़ी थी। जनवादी मूल्यों की उपस्थिति तो आगे भी कहानियों में बनी रही, लेकिन नब्बे के दशक से कहानी आंदोलनों का सिलसिला पूरी तरह थम गया।

2.6.1 नई कहानी

प्रेमचंद-प्रसादोत्तर कहानी के पश्चात् हिंदी कहानी के परिदृश्य पर 'नई कहानी' की शुरुआत देखी जा सकती है। वास्तव में नई कहानी की चेतना स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन के यथार्थ की चेतना है। हिंदी कहानी के इतिहास में सन् 1954 से सन् 1963 तक के काल खण्ड को नई कहानी की सीमा माना जा सकता है। नई कहानी के लेखकों में धर्मवीर भारती, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, फणीश्वरनाथ रेणु, निर्मल वर्मा, शेखर जोशी, कृष्ण बलदेव वैध, भीष्म साहनी, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, रमेश बक्षी, रघुवीर सहाय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

'नई कहानी' का नयापन उसकी विद्रोह चेतना में अंतर्निहित है। स्वाधीनता के बाद भारत-विभाजन और साम्प्रदायिक दंगों के परिणामस्वरूप पारम्परिक मूल्यों में विघटन और स्थापित नैतिक-बोध की निरर्थकता, संयुक्त परिवार का विघटन, टूटते हुए पारिवारिक संबंध तथा नारी का आर्थिक-सामाजिक उन्नति के लिए संघर्ष, मानव के अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न और उसका संकट-बोध, व्यक्तित्व का विघटन, पीढ़ियों का संघर्ष तथा प्रेम और यौन-संबंध आदि से संबंधित सामाजिक-वैयक्तिक समस्याएँ भारतीय समाज में पैदा हो गई थीं, जिसकी अभिव्यक्ति नई कहानी में यथार्थ के धरातल पर हुई है। विभाजन की पीड़ा को अज्ञेय ने 'शरणदाता', 'लेटर बॉक्स', विष्णुप्रभाकर ने 'मेरा वतन', कृष्णा सोबती ने 'सिक्का बदल गया', भीष्म साहनी ने 'अमृतसर आ गया है' तथा महीपसिंह ने 'पानी और पुल' जैसी कहानियों में अभिव्यक्ति दी है।

स्वतंत्रता के बाद सामाजिक और पारिवारिक संबंधों में आमूल परिवर्तन आ रहा था। वास्तव में नई कहानी का जन्म ही सामाजिक दायित्व के बोध के स्तर पर हुआ है। समाज का मूलाधार परिवार होता है और जब पारिवार का विघटन होता है तो व्यक्ति के सामाजिक व पारिवारिक संबंधों में अंतर आने लगता है। प्रेमचंद्र के समय में ही संयुक्त परिवार का ढाँचा चरमराने लगा था। लेकिन आज़ादी के बाद यह प्रक्रिया और तेज हुई और संयुक्त परिवार के विघटन ने पारिवारिक समस्या को और भी गंभीर बना दिया। संयुक्त परिवार के टूटने के परिणामस्वरूप पारिवारिक विघटन में पति-पत्नी के संबंधों में टूटन और तनाव के साथ-साथ पिता-पुत्र, माँ-पुत्र, भाई-भाई और भाई-बहन के पारस्परिक संबंधों में बदलाव आया है। एक ओर जहाँ तत्कालीन राजनीतिक घटनाएँ

और सामजिक आर्थिक कारण हैं तो, वहीं दूसरी ओर नारी-स्वातंत्र्य ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इस दृष्टि से उषा प्रियंवदा की 'वापसी' में गजाधर बाबू-पिता और परिवार के सदस्यों के बीच संबंधों में अजनबीपन, भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' में शामनाथ और उसकी माँ के बीच संबंधों में उदासीनता, 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' (उषा प्रियंवदा) में भाई-बहन के बीच आर्थिक स्थिति, कमलेश्वर की 'आसक्ति' तथा मोहन राकेश की 'आर्द्रा' आदि में माँ और बेटों के बीच अस्थिरता, शेखर जोशी की 'आखिरी टुकड़ा' में पिता-पुत्र के पारस्परिक संबंधों के विघटन तथा 'डरे हुए' और 'परिक्रमा' कहानियों में भी संयुक्त परिवार के विघटन की तेज होती प्रक्रिया को दिखाया गया है। ऐसी अनेक कहानियाँ हैं जिनमें संयुक्त परिवारों के टूटने के परिणाम-स्वरूप पारिवारिक विघटन की समस्या को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्ति दी गई है।

पारिवारिक विघटन की प्रक्रिया में स्त्री-पुरुष अर्थात् पति-पत्नी के पारस्परिक संबंधों में बिखराव और परिवार में अकेली पड़ती नारी की स्थिति को देखा जा सकता है। पारिवारिक स्तर पर इन संबंधों के टूटने का क्रम पति-पत्नी के दाम्पत्य जीवन में अधिक दिखाई देता है। पति-पत्नी के संबंधों में अलगाव और अकेलापन, तनाव और टूटने की कहानियाँ रही हैं 'एक और जिन्दगी' (मोहन राकेश), 'टूटना', 'पुराने नाले पर नया फ्लैट' (राजेन्द्र यादव), 'यह मेरे लिए नहीं', 'सावित्री नं. दो', (धर्मवीर भारती), 'आकाश के आईने में', 'चश्में' (मन्नू भण्डारी), 'कोई नहीं' (उषा प्रियंवदा), 'अनबीत व्यतीत' (नरेश मेहता), 'बदली बरस गई' (कृष्ण सोबती) आदि।

दाम्पत्य जीवन के बिखराव को दिखानेवाली कहानियों में 'तीसरी आदमी' (मन्नू भण्डारी) तथा 'एक और जिन्दगी', 'सुहागिनें' (मोहन राकेश) आदि उल्लेखनीय हैं। बदलते पति-पत्नी के संबंधों के बीच बिखरती और अकेली पड़ती शिक्षित नारी की आन्तरिक घुटन और विवशता का चित्रण - 'मिस पाल' (मोहन राकेश), 'परिन्दे' (निर्मल वर्मा), 'अकेली' (मन्नू भण्डारी), 'एक दूसरा कोई', 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' (उषा प्रियंवदा), 'एक कमज़ोर लड़की की कहानी' (राजेन्द्र यादव), 'एक नाव के यात्री', 'शानी' तथा 'निर्वासित' (अमरकान्त), आदि में देखा जा सकता है।

पति-पत्नी की जिन्दगी में तीसरे पुरुष के आने से भी प्रेम-संबंधों में तनाव, घुटन और जटिलता आ जाती है। 'नीला अँधेरा', 'त्रिकोण' (कृष्ण बलदेव वैद), 'तलाश', 'रुकी हुई जिन्दगी' (कमलेश्वर), 'अंधेरे में' (निर्मल वर्मा), 'प्रतीक्षा' (राजेन्द्र यादव) तथा 'यही सच है', 'तीसरा आदमी' (मन्नु भण्डारी) आदि ऐसी कहानियों के उदाहरण हैं। इस तरह नई कहानी यथार्थ और जीवन की वास्तविकताओं के अंकन के आधार पर अपने को अलग करती है।

इस दौर में नगर व ग्राम कथा के साथ-साथ आंचलिक कहानियों का अस्तित्त्व भी सामने आया। ग्रामांचल कहानीकारों में शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय तथा फणीश्वरनाथ रेणु का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। शिवप्रसाद सिंह के मुख्य कहानी संग्रह हैं 'मुर्दासराय' तथा 'इन्हें भी इन्तजार है'। मार्कण्डेय की 'गुलरा के बाबा', 'हंसा जाई अकेला' जैसी कहानियों से उन्होंने अपनी परंपरा से लोगों को मिलाने की कोशिश की हैं। मात्र, ग्रामकथा ही नहीं बल्कि नगरीय जीवन को लेकर लिखीं उनकी कहानियाँ हैं

'महुए का पेड़', 'भूदान', 'भाटी' आदि। अन्य सभी लेखकों से हटकर फणीश्वरनाथ 'रेणु' की कहानियों ने आंचलिक कहानियों के नए क्षेत्र खोल दिए, जो कहानी के क्षेत्र में मील का पत्थर मान सकता है। 'तीसरी कसम', 'पंचलैट', 'दो बैलों की कथा', 'रसप्रिया' आदि उनकी प्रमुख आंचलिक परिवेश वाली कहानियाँ हैं।

कमलेश्वर ने ग्रामकथा या नगरकथा से हटकर कस्बाई परिवेश को पाठकों के सामने रखा। उनकी कहानियों में सम्बन्धों की जटिल और सांकेतिक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, उदाहरण केलिए 'देवा की माँ' कहानी को लिया जा सकता है। अमरकान्त की 'जिन्दगी और जोंक' कहानी में गाँवों से शहर की ओर आकर्षित होती मनोवृत्ति का मार्मिक चित्रण हुआ है। कस्बाई मनोवृत्ति के चित्रण में अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन', 'डिप्टी कलेक्टरी', 'गगन बिहारी', कमलेश्वर की 'राजा निरबंसियाँ', 'नीली झील', 'खोई हुई दिशाएँ', शानी की 'डाली नहीं फूलती', 'एक नाव के यात्री' तथा धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो' तथा अमृतराय की 'कस्बे का एक दिन' आदि उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। महानगरों के अकेलेपन को चित्रित करती मोहन राकेश की 'मिसपाल', 'आर्द्रा', 'अपरिचित', 'फौलाद का आकाश' तथा 'मलबे का मालिक' पठनीय एवं महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं। 'लन्दन की एक रात', 'डेढ़ इंच ऊपर', 'पहाड़' आदि निर्मल वर्मा की इसी मनोवृत्ति की कहानियाँ हैं। इसके अलावा राजेन्द्र की कहानी 'टूटना', 'प्रतीक्षा', मन्नू भंडारी की 'क्षय', 'मैं हार गयी' उषा प्रियंवदा की 'मछलियाँ', 'वापसी' कृष्णा सोबती की 'बादलों के घेरे', 'यारों का यार' तथा भीष्म साहनी की 'चीफ की

दावत', 'इन्द्रजाल' आदि महानगरीय अकेलापन से उपजी जटिलताओं का स्वाभाविक चित्रण करती हैं।

2.6.2 साठोत्तरी कहानी आंदोलन (अकहानी आंदोलन)

स्वतंत्रता के बाद का जो मोहभंग एवं निराशा नई कहानी के दौर में था, वह साठ के दशक में और गहरा हो गया। इन्हीं परिस्थिति के बीच साठोत्तरी कहानी या अकहानी आंदोलन का विकास हुआ तथा इसमें राजनीतिक पतन, बेरोजगारी एवं संबंधहीनता की तीखी अभिव्यक्ति हुई। गंगाप्रसाद विमल और रवीन्द्र कालिया इस आंदोलन के प्रमुख वक्ता रहे हैं। गंगाप्रसाद विमल अकहानी को आंदोलन न मानकर, एक दृष्टि मानते हैं जो कहानी के स्वीकृत मूल्यों के निषेध पर बल देती है। राजनीति के प्रति एक व्यापक मोहभंग व उसके परिणामस्वरूप व्यंग्य और विद्रूपता बढ़ती हुई प्रवृत्ति नई कहानी के दौर में ही शुरू हो चुकी थीं। अकहानी तक आते-आते राजनीति के प्रति मोहभंग और हताश का यह भाव और भी सघन होता दिखाई देता है। राजनीति और नेताओं को लेकर उसकी आक्रामकता भी उसी अनुपात में बढ़ती है लेकिन कुल मिलाकर अकहानी का मूल स्वर राजनीति के प्रति उदासीन रहा है।

रवीन्द्र कालिया जीवन की विसंगतियों और विद्रूपताओं के कहानीकार हैं। इन विसंगतियों को वे व्यंग्य के माध्यम से उद्‌घाटित करते हुए हर प्रकार की व्यवस्था और स्थापित मूल्यों को अस्वीकार किया है। महानगर का जीवन उन्हें गहरी ऊब से भरा दिखाई देता है जिसमें संबंधों का विश्वास बिखरता हुआ दिखाई देता है। गिरिराज किशोर की 'पेपर वेट' एवं रवीन्द्र कालिया की 'काला रजिस्टर' में उस दौर की व्यवस्था के

आतंक को स्पष्ट रूप से दिखाया गया है। रामनारायण शुक्ल की 'किसी शनिवार को', रवीन्द्र कालिया की 'सिर्फ एक दिन' तथा दूधनाथ सिंह की कहानी 'स्वर्गवासी' में बेकारी की स्थिति को महसूस किया जा सकता है।

साठोत्तरी कहानी की दौर में परंपरागत रिश्तों में बदलाव आया। ज्ञानरंजन की 'पिता' रवीन्द्र कालिया की 'त्रास' एवं दूधनाथ सिंह की 'रक्तपात' आदि में यह देखा जा सकता है। साठोत्तरी कहानी का बड़ा हिस्सा संबंधों पर केंद्रित है। ज्ञानरंजन की 'शेष होते हुए', 'यात्रा', 'दाम्पत्य', 'पिता', 'संबंध' आदि पारिवारिक संबंध के विविध आयामों पर केन्द्रित हैं। संबंधों में आये बदलाव की पहचान रवीन्द्र कालिया की कहानी 'नौ साल छोटी पत्नी', 'एक प्रामाणिक झूठ', 'डरी हुई औरत', 'कोजी कार्नर' आदि में विशेष रूप से उभर कर आई है। इसी तरह महेंद्र भल्ला की कहानी 'एक पति के नोट्स में' दाम्पत्य संबंधों पर लिखा है तो दूधनाथ सिंह की कहानी 'आइसबर्ग' में पूरे कुटुंब ही अनजानों की तरह बन गया है।

मध्यवर्गीय जीवन के मूल्यगत बदलाव एवं पतन को ज्ञानरंजन की कहानी 'बहिर्गमन', 'घंटा', 'अनुभव' आदि कहानियों में चित्रित किया गया है। इस दौर की कहानियों में प्रायः संत्रास की मनःस्थिति का भी चित्रण हुआ है। रामनारायण शुक्ल की 'महेंद्र का भाई' तथा काशीनाथ सिंह की 'चायघर में मृत्यु' एवं 'लोग बिस्तरों पर' में इसे देखा जा सकता है।

इस दौर की अनेक कहानियों में यौन संबंधों का चित्रण देखने को मिलता है। राजकमल चौधरी की 'अग्निस्नान', 'एक अजनबी रात के लिए एक शाम', 'व्याकरण

का तृतीय पुरुष' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। महेंद्र भल्ला की 'पुल की परछाई' में भी यौन आकर्षण का चित्र है।

अकहानी में दाम्पत्य संबंध में बड़ा बदलाव दिखाई देता है। काशीनाथ सिंह की कहानी 'आखिरी रात' में दाम्पत्य में तनाव दिखाया है तो, ज्ञानरंजन की 'दाम्पत्य' में एकरसता के कारण ऊब की स्थिति दिखाई है। इस तरह साठोत्तरी दौर की कहानियों की संवेदना प्रायः उस समय या युग की अभिव्यक्ति करती है जहाँ किसी ओर से कोई उम्मीद की किरण नहीं है।

2.6.3 अन्य कहानी आंदोलन

स्वतंत्रता के आसपास के वर्षों में नवलेखन का काल शुरू होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश विभाजन से हुए सांप्रदायिक फसाद शरणार्थियों की समस्या, सामंतवादी अलगाव का षड्यंत्र, प्रजातंत्रीय व्यवस्था और सामंतवादी जीवन मूल्यों की टकराहट आदि समस्याओं से नयी कहानी का जन्म हुआ, जिसमें मुख्य रूप से मध्यवर्गीय मूल्यबोध, समकालीन जीवन की पहचान, स्थापित नैतिक बोध को चुनौती, आधुनिकता बोध की चुनौती, सर्जनात्मक भाषा तथा नयी व्यवस्था के प्रति आशा देखी जा सकती है। नयी कहानी एवं साठोत्तरी कहानी आंदोलन के बाद हिंदी कहानी में जो अन्य कहानी आंदोलन हुए, वे हैं - सचेतन (1964), सहज (1968), समांतर (1972), सक्रिय (1979) एवं जनवादी कहानी आंदोलन। ये आंदोलन अपने समय की पहचान देते विकसित हुए।

2.6.3.1 सचेतन कहानी आंदोलन

सचेतन कहानी की शुरुआत 1964 ई. में प्रकाशित 'सचेतन कहानी विशेषांक' के प्रकाशन से माना जाता है, जिसके संपादक डॉ.महीप सिंह थे। महीप सिंह की दृष्टि से - सचेतन आंदोलन मूलतः विचार प्रधान आंदोलन है, तथा सचेतन एक दृष्टि है। वह दृष्टि जिसमें जीवन जीया भी जाता है और जाना भी जाता है।

कथ्य के स्तर पर सचेतन कहानी का फलक बहुआयामी है। यह भारतीय जीवन मूल्यों के विघटन को नगरीय तथा महानगरीय परिवेश में देखती है, किन्तु विघटन को लेकर उसमें न गुस्से का भाव है न आश्चर्य का। वह इस विघटन को लेकर सहजता से स्वीकार कर सहजता से अभिव्यक्त करती है, जैसे महीप सिंह की कहानी 'धुंधले कोहरे' में इसका चित्रण देखा जा सकता है। इस कहानी में महानगरीय जीवन में मित्रों, पिता-पुत्र तथा माँ-बेटे के संबंधों में आये बदलाव को पूरी तटस्थता के साथ उभारा गया है।

सचेतन कहानी आंदोलन में महीप सिंह के अलावा योगेशगुप्त, मनहर चौहान, धर्मेंद्र गुप्त, कुलभूषण आदि जुड़े हैं। महीप सिंह की कहानियों में 'कील', 'सन्नाटा', 'ब्लाटिंग पेपर', 'पानी और पुल', योगेशगुप्त की 'एनक्लोजर', मनहर चौहान की 'बीस सुबहों के बाद', धर्मेंद्र गुप्त की 'मोड़ से पहले' आदि उस समय की चर्चित कहानियाँ रही हैं।

2.6.3.2 सहज कहानी आंदोलन

1968 ई. में अमृतराय ने 'नयी कहानियां' मासिक पत्रिका के माध्यम से सहज कहानी आंदोलन का सूत्रपात किया। यह कहानी आंदोलन अमृतराय द्वारा 'नयी

कहानियां' में लिखी गयी संपादकीय टिप्पणी तक ही सीमित रहा। इन्होंने कथ्य की सहज अभिव्यक्ति देकर जो कहानी लिखी वह केवल वैचारिक स्तर पर ही रह गयी। कहानी के रचनात्मक स्तर पर, सहज कहानी न तो व्यापक आंदोलन बन पाया न किसी तरह का नया रचनात्मक उन्मेष कर पाया।

2.6.3.3 समांतर कहानी आन्दोलन

सामान्यतः सन् 1972 में समांतर कहानी का प्रारंभ माना जाता है। समांतर कहानी आंदोलन का प्रवर्तन कमलेश्वर के नेतृत्व में चला था। उन्होंने 'सारिका' पत्रिका के संपादन के दौरान इस कहानी आंदोलन को आगे बढाया। डॉ.विनय इसके सिद्धांतकारों में एक रहे हैं। इस आंदोलन में सभी उम्र एवं विचारधारा के लोगों के लिए सामान्य मंच की बात की गई। कथा-लेखन के उपेक्षित वर्ग यानी 'आम आदमी' को यहां स्वीकार्यता मिली। इस कहानी आन्दोलन से जुड़े कहानीकारों में प्रमुख हैं - कमलेश्वर, कामतानाथ, मधुकर सिंह, बसंत कुमार आदि। इनके अलावा इस आंदोलन से जुड़ी कहानियों में जितेन्द्र भाटिया की 'शहादतनामा' मधुकर सिंह की 'हरिजन सेवक', 'भाई का जख्म' से.रा.यात्री की 'अँधेरे का सैलाब', निरुपमा सेवती की 'तलाश के बाद', 'आतंक के बीच' आदि प्रमुख हैं।

कमलेश्वर की 'जोखिम', 'ब्यान', 'इतने अच्छे दिन' आदि आम आदमी के संघर्ष को जीवन की समग्रता में देखती है। मेहरुन्निसा परवेज़ की कहानी 'आतंक भरा सुख' इससे भिन्न है। इस कहानी की पृष्ठभूमि में बस्तर के दूर-दराज़ क्षेत्रों की मारक गरीबी का चित्रण है। मधुकर सिंह मूलतः जनवादी चेतना के लेखक हैं, और जनवादी

कहानी के अंतर्गत ही उनकी चर्चा की जायेगी, लेकिन वे समांतर कहनी से भी सक्रिय रूप में जुड़े रहे। उनकी 'हरिजन सेवक' अछूतों और हरिजनों पर होने वाले अत्याचारों की कहानी है। दामोदर सदन के 'श्मशान' की कहानियाँ मुख्यतः आदमी की बेबसी की कहानियाँ हैं, जो स्थितियों के बीच फँसे आदमी के दैन्य और हताशा को पर्याप्त करुणा के साथ अंकित करती हैं। वैसे ही स्वदेश दीपक के संग्रह 'तमाशा', 'जयहिंद', 'एक बार फिर' आदि कहानियाँ आदमी की पीड़ा, यातना और अभाव को अंकित करने की कोशिश के परिणाम हैं। समांतर कहानी के अंतर्गत लिखी गई कहानियाँ कैसे यथास्थितिवाद का समर्थन करती हैं, आलमशाह खान की कहानियाँ इसे कई स्तरों पर स्पष्ट करती हैं। वैसी ही एक कहानी लेखिका है सुधा अरोड़ा, जिन्होंने 'बगैर तराशे हुए' से समांतर कहानी आंदोलन में अपनी उपस्थिति दर्ज की। वास्तव में ये सारी कहानियाँ नये युग के नये प्रश्नों का सामना करती हैं। अर्थात् समांतर कहानी किसी भावुक विकल्प को नहीं चुनती, बल्कि वह जीवन की सच्चाई की क्रूरता को व्यक्त करती है।

2.6.3.4 सक्रिय कहानी आंदोलन

राकेश वत्स ने सन् 1979 में 'मंच' पत्रिका के विशेषांक में सक्रिय कहानी आंदोलन के नाम से एक नई अवधारणा पेश की। उनके अनुसार सक्रिय कहानी चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी है। सक्रिय कहानी अपना संबंध फणेश्वरनाथ रेणू और नागार्जुन से जोड़ती है। यह कहानी समाज में व्यापक शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाती है और शोषण के कारणों को रेखांकित भी करती है। उदाहरण स्वरूप राकेश वत्स की 'काले पेड़', रमेश बतरा की 'जंगली जुगरा किया', धीरेन्द्र अस्थाना की 'लोग

हाशिए पर' आदि कहानियों को देखा जा सकता है। इस आंदोलन में भी आम आदमी को ही केन्द्र में लाया गया है।

2.6.3.5 जनवादी कहानी

हिंदी साहित्य में 'जनवाद' की अवधारणा कबीर से शुरू करके पूरे मध्यकालीन कवियों सहित प्रेमचंद तक के साहित्य में देखी जा सकती है। प्रगतिवादी लेखक संघ की स्थापना के पूर्व से हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद मौजूद था। प्रेमचंद, निराला और राहुल साकृत्यायन के साहित्य में उसकी उपस्थिति देखी जा सकती है। उसी तरह सन् 1982 में जनवादी लेखक संघ की स्थापना के पूर्व भी हिंदी में जनवाद मौजूद था। लेकिन जनवादी लेखक संघ की स्थापना के मूल में सामयिक और तात्कालिक कारण भी थे। जनवादी कहानी आंदोलन को किसी एक व्यक्ति या पत्रिका ने घोषणा-पत्र निकालकर शुरू नहीं किया। बल्कि यह एक मूल्य दृष्टि के रूप में विकसित हुई। वैसे जनवादी कहानी सामान्य जन की पक्षकार है। यह आंदोलन समकालीन, शोषणमूलक व्यवस्था के भ्रष्ट परिवेश की उपज माना जा सकता है। इसका उदय आठवें दशक में देखने को मिलता है। जनवादी मूल्यों की कहानी तो हिंदी में प्रेमचंद के समय में दिखाई देती थी। बाद में प्रेमचंद की परंपरा, जनवादी आंदोलन से आगे आने लगा। जनवादी कहानी ने आम आदमी के संघर्ष को समांतर कहानी की भाँति कृत्रिमता से न गढ़कर सहज रूप से अभिव्यक्त किया है।

कहानी के सन्दर्भ में, जनवादी कहानी वस्तुतः प्रगतिशील कहानी का ही विस्तार है। जनवादी कहानीकार भाषा एवं शिल्प के प्रति पूर्ववर्ती कहानिकारों की अपेक्षा सजग

है। काशीनाथ सिंह की 'सुबह का डर' तथा अन्य कहानी, स्वयं प्रकाश की 'अम्मा कैसे कैसे' और 'सूरज कब निकलेगा' आदि ऐसी कहानियाँ है जिनमें अनुभव और विचार का सामंजस्य जीवन की समस्याओं के संदर्भ में देखा जा सकता है।

नई कहानी आंदोलन के विरुद्ध सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से जो लेखक सक्रिय थे, भीष्म साहनी उनमें प्रमुख हैं। उन्होंने अपनी कई कहानियों में धार्मिक एवं सांप्रदायिक दृष्टि की संकीर्णता और उसके जीवन-विरोधी स्वरूप को उद्‌घाटित किया है। 'पहला पाठ' और 'पाप-पुण्य' जैसी कहानियाँ आर्यसमाजी आचार एवं जीवन-पद्धति के अंतर्विरोधों को उद्‌घाटित करती हैं, जबकि 'कांटे की चुभन' और 'एषधर्मः सनातनः' में क्रमशः धार्मिक स्पर्धा और किसी भी धर्म की अपेक्षा पेट और भूख अधिक महत्त्वपूर्ण और स्थायी होने का सत्य उभर कर सामने आता है। 'नीली आँखें' स्त्री की सामाजिक असुरक्षा की पृष्ठभूमि में सामूहिक प्रतिक्रियाओं की कहानी है, जिसमें स्त्री की युवा देह के प्रति पुरुष-वर्ग की आँखों में लोभ और वासना की चमक खूब गहरी होकर उभरी है। अमरकांत की कहानियों के चरित्रों के माध्यम से देश के असंख्य लोगों की सोच और मानसिकता को वाणी देती हैं। 'दोपहर का भोजन' में तटस्थता के साथ समूचे निम्नमध्यवर्ग के त्रासद अभावों को अंकित किया गया है।

रमेश उपाध्याय यथार्थ के जिस स्वरूप एवं आम-जन की जिजीविषा को दिखाया है वह उनकी कहानी 'देवी सिंह कौन', काशीनाथ सिंह की 'सुधीर घोषाल' एवं 'मुसई चा', असगर वजाहत की 'दिल्ली पहुंचना है' एवं उदय प्रकाश की 'टेपचू' जैसी कहानियों में दिखाई देती है। शेखर जोशी की 'बंद दरवाजे : खुली खिड़कियाँ'

निम्नमध्यवर्ग से उच्चतर वर्ग में संक्रमण की विडंबना को किंचित् व्यंग्य के साथ उभारती है। इसी तरह 'तरू का निर्णय' भी मध्यवर्गीय विसंगतियों पर केन्द्रित है। मानव संबंधों की विडंबना की कहानी है ज्ञानरंजन की 'घंटा'।

असल में नई कहानी आंदोलन समय के साथ बदला और उसके बाद की कहानी आंदोलन अपने समय में उभरा तथा अपनी खास विशेषताओं के कारण अपनी सीमाओं में बंधा रहा। फलस्वरूप कोई भी आंदोलन सफलता के साथ भले ही बहुत दिनों तक नहीं चला पाया, फिर भी हरेक आंदोलन ने हिंदी कहानी के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

2.7 समकालीन कहानी

अस्सी के दशक के अंत एवं नब्बे के दश के प्रारंभ से 'समकालीन कहानी' की शुरुआत होती है। अंग्रेजी शब्द 'कंटेम्पोरेरी' का हिंदी पर्यायवाची शब्द है 'समकालीन', जिसका शाब्दिक अर्थ है अपने समय के वास्तविक जीवन के निकट रहना। इसने नई कहानी की कथ्यगत तथा शिल्पगत रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयास किया। समकालीन हिंदी कहानीकारों में उल्लेखनीय हैं - गोविंद मिश्र, गंगाप्रसाद विमल, महेंद्रभल्ला, नरेंद्रकोहली, ज्ञानरंजन, मंजुल भगत, मृदुला गर्ग, राजी सेठ आदि। समकालीन हिंदी कहानिकारों ने समाज की हर समस्या को अपनी कहानी का विषय बनाया। समय का दबाव, तनाव, भय और अंतर्द्वन्द्व की मार्मिक उपस्थिति इनकी कहानियों में देखी जा सकती है। समय के साथ इनकी अनेक प्रवृत्तियाँ उभर आयी है।

2.7.1 समकालीन हिंदी कहानी : प्रवृत्तियाँ

2.7.1.1 स्त्री विमर्श

इक्कीसवीं सदी के साहित्यिक परिदृश्य में स्त्री को केन्द्र में रखकर स्त्री की अस्मिता की पहचान की कोशिश की गयी। आज के इस भूमंडलीकृत समाज में स्त्री के प्रति व्यावसायिक और भोगवादी नजरिया तेजी से पनप रही है। समकालीन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से इस स्थिति से उबरने की सृजनात्मक कोशिश की है। इन सबकी रचनाओं में समाज की इस व्यवस्था में नारी की स्थिति को बड़ी ईमानदारी के साथ व्यक्त किया है। इस तरह युग-युग से होते आए शोषण और दमन के प्रति पनपी स्त्री-चेतना ने स्त्री-विमर्श को जन्म दिया। 'स्व' के प्रति सजगता और अपने अधिकार एवं अस्तित्व की चेतना इसका मुख्य स्वर रहा।

रामदरश मिश्र की 'एक अधूरी कहानी', 'आखिरी चिट्ठी' आदि कहानियों के ज़रिए तत्कालीन समय में स्त्री पर हो रहे अत्याचारों का चित्रण किया है तो मिथिलेश्वर ने अपनी कहानियाँ 'पहली घटना', 'सावित्रि दीदी', 'नरेश बहू' आदि के द्वारा स्त्री के ऊपर हो रही पीड़ाओं का वर्णन किया है। मृदुला गर्ग की कहानी 'मिजाज', 'रेशम', 'तीन किलो की छोरी' आदि स्त्री विमर्श का उत्तम उदाहरण है। संजीव की कहानी 'माँ' में उन्होंने स्त्री विमर्श को पारिवारिक संदर्भ में देखने का प्रयास किया है। उसी प्रकार मध्यवर्गीय स्त्री की विवशता, नारी स्वातंत्र्य आदि विषय को उभारते हुए लिखी चंद्रकान्ता की कहानियाँ हैं 'दहलीज पर न्याय', 'मेरी माँ कहा करती थी', 'बस इतना ही' आदि।

स्त्री विमर्श पर लिखे कुसुम अंसल की 'खंडहर और बोन्साई', 'सन्नाटे की चीख', 'बस एक क्रास'; कृष्णा अग्निहोत्री की 'स्वाभिमानी', 'रमकलिया'; सूर्यबाला की 'रमन की चाची', 'झील', 'कहाँ तक'; राजी सेठ की 'ढलान पर', 'सदियों से'; उषा यादव की 'अदृश्य दीवारों की कैद', 'दलाल' आदि कहानियाँ प्रमुख हैं। पुरुषों द्वारा लिखित स्त्री केन्द्रित कहानियों में प्रमुख हैं - विष्णु प्रभाकर की 'माँ, माँ मुझे मत मारो', 'ज़िन्दगी एक रिहर्सल'; भीष्म साहनी की 'निशाचर'; गिरिराज किशोर की 'बच्चों से कौन डरता है' आदि।

आज स्त्री शिक्षित होने पर आधुनिक समाज में उनकी स्थिति बदल गयी और नई परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। मंजुल भगत की 'संबंधहीन', 'तीसरा अस्तित्व'; दीप्ती खंडेलवाल की 'अंधेरे की छलाँग', 'टूटा हुआ पुल' आदि इस भाव को लेकर चलनेवाली कहानी है। 'चीख के आर पार'(मिलन), 'एक बार और'(शरद सिंह) आदि कहानियों में स्त्री-पुरुष की शिथिलता का चित्रण हमें मिलता है।

2.7.1.2 दलित विमर्श

जिस तरह स्त्री आंदोलनों के कारण सामाजिक जीवन की मुख्यधारा में स्त्री अधिकारों की मांग तेज हुई उसी तरह 19वीं सदी में ज्योतिबा फुले और 20वीं सदी में बाबा साहब अंबेडकर के आन्दोलनों और विचारों के कारण सामाजिक जीवन की मुख्यधारा में हाशिये की जिन्दगी व्यतीत कर रहे दलित समाज के अधिकारों को लेकर बहसें शुरु हुई। वहीं से दलित आंदोलन शुरू हुआ। दलित शब्द का अर्थ है दबाया हुआ।

मनुष्य के रूप में जीने का अधिकार जिनसे छीन लिया गया है उनके दुःख दर्द को पहचानना और उसको अभिव्यक्ति देना दलित साहित्य का मकसद है।

हिंदी के दलित रचनाकारों में अग्रगण्य ओमप्रकाश वाल्मीकि के द्वारा समाज की जाति व्यवस्था की ओर इशारा करती हुई लिखी कहानी है 'ब्रह्मास्त्र' इसके साथ ही 'गोहत्या', 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' आदि कहानियों में भी शोषण और सामाजिक भेदभाव की अभिव्यक्ति वाल्मीकि ने की है। पत्रकारिता की दुनिया में दलितों के प्रति भेद भाव की मानसिकता का चित्रण 'दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन' कहानी में वाल्मीकि ने किया है। दलित स्त्रियों के यौन शोषण पर लिखी कहानियाँ हैं 'यह अन्त नहीं', 'खानाबदोश' आदि। 'शवयात्रा', 'हत्यारे' आदि कहानियों में वाल्मीकि ने दलित समाज के अन्तर्विरोधों का यथार्थ चित्र खींचा है।

प्रह्लाद चन्द्रदास की कहानियाँ 'कुचले हुए लोग', 'लटकी हुई शर्त'; मोहनदास नैमिशराय की 'हारे हुए लोग', 'आवाज़ें', 'अपना गाँव'; जय प्रकाश कर्दम की 'नो बार', 'चमार'; सुशीला टाकभौरे की 'सिलिया'; दयानन्द बटोही की 'सुरंग'; एस.आर.हरनोट की 'जीनकाठी'; कुसुम वियोगी की 'अंतिम बयान', 'हम भी आज़ाद है'; श्यौराज सिंह बेचैन की 'शोध-प्रबंध'; सूरजपाल चौहान की 'अहिल्या'; शत्रुघन कुमार की 'हिस्से की रोटी'; बिपिन बिहारी की 'बिवाइयाँ'; रत्न कुमार सांभरिया की 'फुलवा'; अजय नावरिया का 'उपमहाद्वीप' आदि दलित संवेदना को उजागर करती कहानियाँ हैं। इन कहानियों में लेखकों ने दलित समाज के उत्पीडन, संघर्ष और प्रतिरोध का यथार्थ चित्रण किया है।

2.7.1.3 आदिवासी विमर्श

समकालीन हिंदी कहानी की एक मुख्य प्रवृत्ति आदिवासी समाज सहित उन हाशिये के लोगों की कहानी है जो भारतीय समाज की मुख्यधारा को गहराई से प्रभावित किया। 1947 में स्वाधीनता के बाद हाशिये के समाज को मुख्यधारा की ओर लाने का प्रयास चल रहा था। आदिवासी जो, देश के मूल एवं प्राचीन निवासी हैं वे आज समाज के विकास के कारण 'विस्थापन' की समस्या को झेल रहे हैं साथ ही वे मुख्यधारा के शोषण और दमन का शिकार होकर हाशिये की जिंदगी व्यतीत करने में विवश है।

समकालीन हिंदी कहानी में आदिवासी समाज के विकास, विस्थापन और उत्पीड़न पर सवाल उठाये कहानीकारों में मेहरून्निसा परवेज, ललित शाह, राकेश वत्स, कैलाश वनवासी आदि महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें ही (आदिवासी विचारकों में) गैर आदिवासी लेखक हैं जो आदिवासी विषय पर लिखा है जैसे, रमणिका गुप्ता, संजीव, राकेश कुमार सिंह, महुआ माजी, बजरंग तिवारी आदि और आदिवासी लेखकों में प्रमुख हैं, हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, आईवी हांसदा आदि।

हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श से संबंधित रचनाएँ हैं, योगेश शर्मा की 'पीछे छूटे लोग', रामधनलाल मीणा की 'अप्रत्याशित', विपिन बिहारी की 'बतचलन', गुरुवचन सिंह की 'भेड़िया', योगेन्द्र सिंह की 'आज शनिवार है', राधाकृष्ण की 'ज़िन्दगी चलती रही', पुन्नी सिंह की 'प्रेतसिद्ध', राकेश कुमार सिंह की 'है आज यहाँ कल वहाँ चले', कैलाश चन्द्र की 'अंधेरे में सुगंध', दीननाथ मनोहर की 'और जंगल शांत हुआ'

शंकरलाल मीणा की 'कहानी के बाहर की औरत' आदि। इन कहानियों में आदिवासियों के जीवन संघर्ष व जीवन की विविध पहलुओं को दर्शाया है।

रमणिका गुप्ता की 'बहू-जुठाई' में झारखण्ड के छोटानागपुर के हरे-भरे पहाड़ों, झरनों, नदियों से घिरे वन प्रांतों में रहनेवाले आदिवासियों की व्यथा को वर्णित किया गया है तो महाश्वेता देवी की 'इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती' में मुण्डा आदिवासियों के संघर्ष को चित्रित किया गया है। मेहरून्निसा परवेज की कहानी 'कानीबाट' में आदिवासी स्त्रियों के शोषित रूप को ही चित्रित नहीं किया है अपितु उससे एक कदम आगे जाकर उन्होंने आदिवासी स्त्रियों के विरोध करने की क्षमता को भी व्यक्त किया है। उदारीकरण, भूमण्डलीकरण और बाजारीकरण के दौर में आदिवासी पर हो रहे अत्याचारों का संगठित होकर विरोध करने लगा। संजीव की कहानी 'दुनिया की सबसे हसीन औरत' में उन्होंने आदिवासी समाज के साथ शोषणकारी व्यवस्था पर भी प्रहार किया है। संजीव केलिए विरोध और प्रतिरोध करने वाली औरत ही दुनिया की सबसे हसीन औरत है। इसलिए आज का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श भी है।

2.7.1.4 पारिस्थितिक विमर्श

भारतीय संस्कृति में वन और वनस्पति की प्रधानता बहुत बड़ी है। लेकिन आज पर्यावरण, जल, मिट्टी, वायु सब प्रदूषित हो रहे हैं। बीसवीं सदी में जब वैज्ञानिक प्रगति हुई, तब प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग बढ़ा फलस्वरूप आज संपूर्ण मानव जाति संकट में आ गए हैं। आज यह समस्या हिंदी कहानी के क्षेत्र में भी उतर आया है। इसको लेकर लिखी कहानियाँ हैं - एस हारनोट की कहानी 'एक नदी तड़पती है', प्रदीप

जिलवाने की 'भ्रम के बाहर' दोनों कहानियों में पर्यावरणीय संकट एवं नदियों के विनाश की पीड़ा को व्यक्त किया है। जयश्री राय की 'खारा पानी'। पूरी कहानी गोवा के समुद्री जीवन पर आधारित मछुआरों की है जिसके समुद्र पर कम्पनी वाले अधिकार जमाने पर उनकी संस्कृति, सभ्यता, आजीविका सब कुछ छीन जाता है। राजेश जोशी की 'कपिल का पेड़', पंखुरी सिन्हा की 'तालाब कहो या पोखर', स्वयं प्रकाश की 'जंगल का दाह' आदि कहानियाँ भी पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को लेकर चली है।

2.7.1.5 भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद

बीसवीं सदी के आखिरी दशक में उदारीकरण की नीति के परिणाम स्वरूप भूमंडलीकरण ने समाज को गहराई से प्रभावित करना शुरू किया। साथ ही बाज़ार व उससे उत्पन्न सांस्कृतिक-सामाजिक परिवर्तन ने समाज पर अपना प्रभाव दिखाने लगा। कोई भी नई व्यवस्था जन्म लेती है तो उसके साथ कई बदलाव भी समाज में आती है। कभी कभी नए पुराने के बीच टकराहट भी होती है। इससे उत्पन्न संघर्ष, मोह, आकंक्षा आदि तत्कालीन समय के समाज, साहित्य एवं संस्कृति में भी झलकती है।

भूमंडीकरण व बाज़ारवाद के परिप्रेक्ष्य में बदलते मानवीय मूल्य, सामाजिक मूल्य और सांस्कृतिक मूल्य का चित्रण हिंदी कहानी साहित्य में भी दिखाई देता है। पंकज बिष्ट की 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते' में विज्ञापन एवं उपभोक्तावादी बाजार के षड्यंत्र का शिकार बनता नायक है तो, उदय प्रकाश की 'पाल गोमरा का स्कूटर' में पाल गोमरा स्कूटर न चला पाने के कारण अंतहीन जड़ता का शिकार बना नायक के पागलपन का चित्रण है। प्रेमकुमार मणि की 'खोज', हरि भटनागर की 'समीर और उसकी बस्ती के

लोग', संजय खाती की 'पिंटी का साबुन', ओमा शर्मा की 'भविष्य द्रष्टा', राजकुमार राकेश की 'अदृश्य अवतार और भटकती आत्माएं' आदि में भूमंडलीकरण एवं बाज़ारवाद के प्रभाव में निर्मित नये भारतीय समाज के यथार्थ को पहचाना जा सकता है। इस प्रकार समकालीन कहानीकारों ने भूमंडलीकरण और उसके तहत निर्मित बाज़ार द्वारा मनुष्य को उपभोक्तावादी समाज में तब्दील करने से आम आदमी की जिन्दगी में होनेवाले परिवर्तनों वा मानवीय जीवन यथार्थ को इन कहानियों में दिखाने का प्रयास किया है।

2.7.1.6 सांप्रदायिकता

भारत कई प्रकार की चुनौतियों का सामना कर रहा है। इनमें से एक है 'सांप्रदायिकता'। विभाजन के समय से सांप्रदायिकता का उग्र रूप प्रकट होने लगे। सांप्रदायिकता और उसकी राजनीति में जो बदलाव हुआ वह तत्कालीन कहानियों में अभिव्यक्त होने लगे। सन् 1984 में हुए सिख हत्याकाण्ड व सन् 1991 में हुए बाबरी मस्जिद ध्वंस के विरुद्ध कहानी लिखनेवालों में प्रमुख रहे हैं, भीष्म साहनी, मंजुल भगत, अमरकान्त, संजीव, नासिरा शर्मा, स्वयं प्रकाश आदि।

भीष्म साहनी की कहानी 'अमृतसर आ गया है', 'सरदारनी', 'पाली' आदि में धर्म का अंधापन कैसे मानव पर हावी होता है साथ ही हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का चित्रण भी मिलता है। इस समय की अन्य रचनाएँ हैं, रमेश उपाध्याय की 'जनशत्रु', 'प्रभाव'; स्वयं प्रकाश की 'हमला'; नासिरा शर्मा की 'सरहद के पार'; संजीव की 'मुर्दगाह', 'कन्फ्यूज़न'; मंजुल भगत की 'स्याह घर' आदि। विभाजन के समय लोगों के आपसी संबंध खो गए। उस समय की कहानियों में इसकी झलक देखी जा सकती है। जयनन्दन की 'हमला'

कहानी हिंदु-सिख धर्म पर आधारित है। गिरिराज किशोर की 'आतंग', चन्द्रकांता की 'काली बर्फक', स्वयं प्रकाश की 'पार्टीशन' आदि कहानी में धर्म निरपेक्षता, सांप्रदायिकता का विरोध आदि देखा जा सकता है।

2.7.1.7 आतंकवाद

राज्य के विरोधियों द्वारा और राज्य के तंत्र द्वारा दो प्रकार के आतंकवाद की प्रवृत्ति देखी जा सकती है। इसका मुख्य कारण देश विभाजन, स्वतंत्र कश्मीर की माँग, गरीबी और बेरोज़गारी आदि है। देखा जाए तो, आतंकवाद समाज के असंतोष से पैदा हुआ है। धर्म और धर्म स्थान आज आतंकवादियों के हाथ में है। आतंकवाद के विरुद्ध उठानेवाली आवाज़ व उससे उभरी समस्याओं को साहित्य द्वारा दिखाने लगे। खासकर कहानियाँ इन ज्वलंत समस्याओं को आधार बनाकर लिखी हैं।

कहानी में ही नहीं कहानिकारों की चेतना को भी आतंकवाद ने झकझोर किया था। विष्णु प्रभाकर की 'सत्य को जीने की राह', भीष्म साहनी की 'सरदारनी' आदि सांप्रदायिक उन्माद पर आधारित कहानियाँ हैं। महीप सिंह की 'एक मरता हुआ दिन' में इंदिरा गांधी की हत्या के बाद हुए दंगों का चित्रण मिलता है। स्वयं प्रकाश की 'क्या तुमने कोई सरदार भिखारी देखा?', तरसेम गुजराल की 'साजिश' आदि कहानियाँ सिख के विरुद्ध हुए दंगों और उसके परिणामों को हमारे सामने रखती हैं। अरुण प्रकाश की 'भैया एक्सप्रेस' कहानी में पंजाब के आतंकवाद के शिकार बने बिहारी युवक का चित्रण हमें मिलता है। अन्य कहानियाँ है, शैलेन्द्र सागर की 'लापता', सत्येन कुमार की 'पनाह', राकेश वत्स की 'लुटेरे', ब्रजेश्वर मदान की 'कबल' आदि।

2.8 निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि कहानी पुराने ज़माने से मानव जीवन के बहुत निकट है। इसमें मानव जीवन से जुड़ी हर समस्याओं की विषमताओं का समावेश देखी जा सकती है। हिंदी कहानी का श्रीगणेश वीरगाथा काल से प्राप्त होता है। सन् 1900 में 'सरस्वती' के प्रकाशन के साथ आधुनिक कहानियों का जन्म माना जाता है। आधुनिक हिंदी कहानी की विकास यात्रा प्रेमचंद से होकर प्रेमचंदोत्तर युग से आगे बढ़ी है। आगे इसमें नई कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, समान्तर कहानी, सक्रिय कहानी व जनवादी कहानी आंदोलन जोड़े गये। ये सारे आंदोलन अपने समय की पहचान देते हुए विकसित हुए। आज समकालीन हिंदी कहानी का दौर चल रहा है। अतः यह समय के साथ समाज की हर समस्या को कहानी का विषय बनाकर आगे बढ़ रहा है। धीरे-धीरे इसमें अनेक प्रवृत्तियाँ जोड़ने लगी, जिसने विमर्श का रूप धारण करना शुरू किया। इसमें स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, पारिस्थितिक विमर्श, सांप्रदायिकता, आतंकवाद, भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद आदि समकालीन हिंदी कहानियों की प्रवृत्तियाँ है। इस तरह आज के दौर में कहानी मात्र मनोरंजन का साधन नहीं, अपितु उसका एक निश्चित उद्देश्य भी होता है।

अध्याय : तीन

हिंदी साहित्य और मीडिया

3.1 अवधारणा

साहित्य को समाज का दर्पण एवं मार्गदर्शन का साधन माना जाता है। पुरातन काल से साहित्य ने जीवन की अभिव्यक्ति देते हुए मनुष्य को सुख-दुःख से उभारने का प्रयास किया है। आधुनिक काल तक आते-आते साहित्य, मनुष्य जीवन से पूरी तरह जुड़ गया। स्त्री, दलित, आदिवासी जैसे हाशिए के समाज को भी साहित्य ने अपना विषय बनाया। इसी कारण मनुष्य साहित्य में अपने जीवन को देखता है साथ ही उससे प्रेरणा भी ग्रहण करता है।

साहित्य का सामना अब सूचना और संचार की जगत से हो रहा है। साहित्य अब पुस्तकों तक सीमित नहीं है, उसे अब दृश्य और श्रव्य माध्यमों का भी सामना करना है। आज जितने भी संचार माध्यम हैं उनमें साहित्य रचना का प्रयोग किस रूप में हो सकता है, यह सवाल अत्यन्त जटिल है। परंपरागत माध्यमों के स्थान पर आज नये माध्यमों का प्रयोग हो रहा है। साहित्य इन संचार माध्यमों से जुड़कर ही नये माध्यमों की ओर बढ़ा है।

वास्तव में साहित्य वह साधन है, जो पाठक-श्रोता-दृष्टा आदि के मन में नैतिक प्रेरणाओं और आत्मविश्वास का संचार करने में सहायक बनता है। ठीक उसी प्रकार की भूमिका है मीडिया का भी। साहित्य और मीडिया से यही अपेक्षा की जाती है कि वे परस्पर एकजुट होकर लोकजागरण का कार्य करें। साहित्य अपने पाठकों-श्रोताओं के विवेकीकरण पर जोर देता है तो मीडिया जनता को सूचनात्मक ज्ञान से संतुष्ट कराती है। अर्थात् साहित्य के व्यापक रूप को व्यक्त करने में माध्यम का प्रयोग अनिवार्य है। आज माध्यमों का प्रयोग सृजन के क्षेत्र में अनेक प्रकार से हो रहा है। प्राचीन युग में

जनसंचार का माध्यम संगीत और नृत्य होते थे। सामवेद से ही संगीत का प्रचलन है। प्राचीन भारत की सारी परंपराएं जिस संस्कृति की उपज हैं उसमें रीति-रिवाजों का व्यापक स्थान रहा है।

3.2 साहित्य की पहली अभिव्यक्ति : लोकनाट्य

संचार का आदिस्रोत 'लोक साहित्य' से साहित्य का संप्रेषण शुरू होता है। लोक साहित्य का अधिकांश भाग लोकनाट्य से जुड़ा है। अतः प्राचीन काल से लेकर अब तक नाटक साहित्य की अभिन्न विधा रही है। संस्कृत साहित्य का शारिपुत्र प्रकरण(अश्वघोष), चारुदत्त अभिषेक(भासकृत), मृच्छकटिकम(शुद्रक), अभिज्ञानशाकुन्तलम् (कालिदास), उत्तररामचरितम्(भवभूति),मुद्राराक्षस(विशाखदत्त), वेणिसंहार (भट्ट नारायण), कर्पूरमञ्जरी (राजशेखर), मत्तविलास (महेन्द्र वर्मन) आदि कालजयी रचनाओं ने समकालीन भारतीय रंगमंच को अनेक प्रकार से समृद्ध किया है।

साहित्य की दृष्टि से 'नाट्यशास्त्र' साहित्य का आदि स्त्रोत है। किन्तु साहित्य के लिए नाट्यशास्त्र उसके अध्ययन का प्रस्थान बिन्दु है। नाट्यशास्त्र से ही साहित्यशास्त्र विकसित हुआ है। नाट्यशास्त्र के माध्यम ने साहित्य एवं साहित्य के संस्कार को लोक में उतारकर साहित्य के प्रति माध्यम की सहयोगी भूमिका का निर्वाह किया। लोकनाट्य वर्ण-वर्ग, शिक्षित-अशिक्षित, गँवार-अभिजात, स्त्री-पुरुष आदि भेदों से मुक्त लोक-रंजनकारी कला रही। इससे जुड़े रंगकर्मियों ने भारतीय संस्कृति की रचनात्मकता को मजबूत किया। पारसी थियेटरों ने व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाकर नाटककार एवं

रंगमंच के बीच की दूरी को बढ़ा दी। देखते ही देखते पारसी थियेटर सम्पूर्ण भारत पर छा गया।

इसी दौर में प्रथम आधुनिक भारतीय नाटककार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र काशी में अव्यावसायिक रंगकर्म की शुरुआत की। वही से रंगमंच को नयी दिशा मिली। इसके लिए इन्होंने रचनाकारों की एक मंडली तैयार की। फिर भी हिंदी क्षेत्र में पारसी नाटक मण्डलियों की स्थिति से ये लेखक परेशान थे। 1871 ई. के आसपास बम्बई से आरंभ व्यावसायिक रंगमंच प्रणाली ने सामान्य जनता की धार्मिक और इश्क संबंधी दो मूलवृत्तियों को सन्तुष्ट करके अपना व्यवसाय चलाया। ये पारसी कम्पनियों का दौर प्रायः 1930 ई. तक बना रहा। धीरे-धीरे सिनेमा के बढ़ते प्रभाव में ये समाप्त हो गये। पारसी नाटकों के विरोध में स्वयं भारतेन्दु और उनके सहकर्मियों ने बहुत लिखा। भारतेन्दु ने पूर्ण, अपूर्ण तथा अनुवादित सब मिलाकर करीब सत्रह नाटक रचे। इनके द्वारा रचा 'नाटक' शीर्षक लम्बा निबंध हिंदी आलोचना का आधारशिला कहा जा सकता है। निश्चित ही नाटक के संप्रेषण पक्ष पर भारतेन्दु युगीन लेखकों का ध्यान अधिक था क्योंकि संप्रेषण के अभाव में नाटक की सार्थकता कम हो जाती है। इसके लिए तत्कालीन समय के रचनाकारों ने इस लोकमाध्यम के सार्थक उपयोग के नाटक रचे एवं स्वयं उनके प्रदर्शन केलिए पहल भी किया।

जयशंकर प्रसाद तक आते-आते नाटक की स्थिति विचित्र हो गई। नाटक रंगमंच से अलग हटकर शुद्ध पठनीय हो गया। इस माध्यम से पृथक साहित्य की स्थिति है। धीरे-धीरे लोकमाध्यम एवं साहित्य का अन्तरावलम्बन कम हो गया। इसका

दुष्परिणाम यह हुआ कि नाटक जनता से दूर होने लगा। प्रसाद के समय से नाटक दृश्य के बजाय पाठ्य अधिक होता गया। सेठ गोविन्द दास तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक इसके लिए उदाहरण हैं। बाद में नाटक को रंगमंच के साथ फिर से जोड़ने में उपेन्द्र नाथ 'अश्क', जगदीश चन्द्र माथुर और भुवनेश्वर ने विशेष प्रयास किया। अश्क ने व्यावहारिक रंगकर्म में भी बराबर रुचि ली। रंगमंच को सक्रिय करने के लिए एकांकी नाटक लिखे गये, जिस दौर को शुरू करने और गति देने में रामकुमार वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। सन् 1950 के बाद धर्मवीर भारती (अंधायुग), मोहन राकेश (आधे अधूरे, आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस) एवं सुरेन्द्र वर्मा (आठवां सर्ग, सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक) ने भी अपनी रंगधर्मिता को साहित्यिक उत्कर्ष प्रदान किया।

स्वतंत्रता के पूर्व स्थापित 'इप्टा' ने रंगकर्म के क्षेत्र में पारसी थियेटर से खड़ी चुनौती का सामना किया। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में 'केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी', 'एशियाई नाट्य संस्थान', 'दिल्ली आर्ट थियेटर', 'अनामिका', 'थिएटर यूनि', 'थिएटर ग्रूप', 'थ्री आर्ट्स क्लब', 'लिटिल थिएटर ग्रूप', 'लखनऊ रंगमंच', 'इलाहाबाद आर्टिस्ट एसोसिशन', 'नाट्य केन्द्र', 'श्री नाट्य वाराणसी', 'भारतीय कला मंदिर' आदि संस्थाओं का उद्‌गम हुआ। इससे रंगमंच को नई दिशा मिली। रंगकर्म के प्रयोगधर्मी युग में शंभुमित्र, बादल सरकार, मोहित चाटर्जी, अण्णा साहब किर्लोस्कर, विजय तेन्दुलकर, चित्रयं खानोलकर, बी.वी.शिखाद्‌कर, सतीश अतिकर, सत्यदेव दुबे, डॉ.श्रीराम लागू, के.एस.कारंत, गिरीश कर्नाड, विजय मिश्र, गोपाल डे, रतन थियम, पणिकर, श्री शंकर

पिल्लई, सी.डी.सिद्धु, हबीब तनवीर आदि प्रसिद्ध रंगकर्मियों ने रंगकर्म को नवीन आयाम दिया।

भारतेन्दु में एक ओर पश्चिम की नयी चेतना देखी जाती है, तो दूसरी ओर अपने लोक जीवन से जुड़े रहने की उतनी ही उत्कृष्ट लालसा भी रहा है। यदि साहित्य का सरोकार सामाजिक चेतना से है तो सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति केलिए लोकनाट्य सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम है क्योंकि नाटक अपने स्वभाव से ही सामाजिक है। कालान्तर में परिवेश की जटिलता के कारण एक नवीन औपन्यासिक विधा की खोज हुई। नये सामाजिक सन्दर्भों में उपन्यास भी उसी ऊँचाई पर पहुँचने का प्रयास किया जहाँ पर पहले नाटक था। फिर भी 'नाटक' हमेशा साहित्य की वह विधा रही है जो अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचे हैं।

3.3 पत्रकारिता और साहित्य की यात्रा

लिखित शब्द के प्रमुख वाहकों के रूप में पत्र-पत्रिकाओं ने साहित्य-सृष्टि को पाठक वर्ग तक पहुँचाने के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया हैं। कहानी, कविता, निबंध, एकांकी, उपन्यास तथा नाटक तक कोई ऐसी साहित्यिक विधा नहीं है, जिसमें रची गई साहित्यिक कृति सबसे पहले पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही पाठक वर्ग तक पहूँची है। साहित्य में उनका प्रभाव और मूल्यांकन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन के आधार पर ही होता है। हंस, सरस्वती, चाँद और धर्मयुग आदि कुछ ही पत्रिकाओं के सर्वेक्षण से यह मालूम होता है कि उनमें प्रकाशित मात्र दस प्रतिशत रचनाएँ ही हैं जो पुस्तक रूप में आ सकीं। बड़े दुर्भाग्य की बात है कि पत्र-पत्रिका के किसी एक अंक में प्रकाशित साहित्य

उस अंक के साथ ही समाप्त हो जाता है। जैसे प्रेमचंद के साहित्यानुसंधान में कुछ रचनाएँ ऐसी मिलीं जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं। यदि ये रचनाऐं खोजी न होती तो ये सारी मौलिक कृतियाँ प्रकाश में न आ पातीं। आज पत्रकारिता, साहित्य से इस तरह जुड़ी है कि वह सर्जनात्मक साहित्य के किसी भी स्तर पर उससे अलग नहीं कर सकता है।

समाचार-पत्रों के आने से पहले लिखने-पढ़ने का आशय सिर्फ काव्य या साहित्य तक परिसीमित था। जैसे-जैसे साहित्य और पत्रकारिता का विकास हुआ, इनके बीच का संबंध और भी गहरा होता गया। अब तो पत्रकारिता को भी साहित्य की तरह रचनात्मक कार्य माना जाता है। जहाँ तक हिंदी का प्रश्न है आरंभ में साहित्यिक और राजनीतिक पत्रकारिता एक प्रकार थी। कालान्तर के व्यावसायिक दबाओं ने उसमें एक अन्तराल उपस्थित किया। पत्रकारिता के विकास के दूसरे चरण में साहित्यिक पत्रकारिता की राह सामान्य पत्रकारिता से बिल्कुल अलग हो गयी।

हिंदी के दिग्गज साहित्यकारों व उनके लेखन पत्र-पत्रिकाओं के संपादन में अपना समय और धन लगाने लगे। इसका इतिहास देखे तो, हिंदी पत्रकारिता का उद्‌भव सन् 1826 में कलकत्ता से प्रकाशित 'उदंत मार्तण्ड' पत्र से हुआ। इसके संपादक एवं प्रकाशक पंडित युगल किशोर शुक्ल स्वयं साहित्यिक अभिरुचि के व्यक्ति थे। उस समय हिंदी भाषियों के हेतु यह पत्र निकाला। अतः पत्रकारिता का जन्म एवं प्रारंभिक विकास साहित्यिक अभिरुचियों का ही प्रतिफलन है।

'कविवचन सुधा' नामक मासिक पत्रिका के द्वारा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता को जनमानस के निकट लाकर जनचेतना का अंग बनाने का प्रयास किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने तीन उपन्यास, सत्रह नाटक, एक निबंध और अनेक काव्य पुस्तकों के साथ 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'कविवचन सुधा' तथा 'बालबोधिनी' पत्रिकाओं का संचालन और सम्पादन किया। इन पत्रिकाओं ने साहित्य के प्रचार-प्रसार के साथ समकालीन साहित्य को नेतृत्व भी प्रदान किया। भारतेन्दु के अतिरिक्त अन्य समकालीन साहित्यकारों ने भी पत्रकारिता को साहित्य के विकास के लिए अपनाया। उसी प्रकार हिंदी निबंध की जड़ों को जमाने में प्रताप नारायण मिश्र द्वारा सम्पादित 'ब्राह्मण'(कानपुर से) और बालकृष्ण भट्ट द्वारा सम्पादित 'हिंदी प्रदीप'(इलाहाबाद से) की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतेन्दुयुगीन अन्य पत्रिकाओं में प्रमुख हैं - 'आनन्द कादम्बिनी' (प्रेमघन), 'सदादर्श' (लाला श्री निवास दास), 'बिहार बन्धु' (केशवराम भट्ट), एवं 'भारतेन्दु' (गोस्वामी राधाचरण) आदि। अतः इस काल की रचनाओं ने पत्रकारिता के माध्यम से नयी चेतना से सम्पर्क का प्रयत्न किया।

इलहाबाद से सन् 1900 में महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन में निकली 'सरस्वती' पत्रिका साहित्य के साथ तत्कालीन समाज के जागरण और विकास की चिन्ता को अभिव्यक्त किया। व्यापक अर्थ में सरस्वती सांस्कृतिक चेतना की पत्रिका थी, यद्यपि भाषा और साहित्य का विकास ही उसका प्रधान लक्ष्य रहा था। हिंदी खड़ीबोली साहित्य को, मैथिलीशरण गुप्त की कविता और प्रेमचंद के कथा साहित्य को सामान्य पाठकों तक पहली बार 'सरस्वती' ने पहुँचाया था। जिस साहित्य को 'सरस्वती' ने प्रकाशित

किया उसमें मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द और रामचन्द्र शुक्ल आदि आधुनिक हिन्दी साहित्य के उल्लेखनीय व्यक्तित्व रहे हैं। 'भरत मित्र' के संपादक बालमुकुन्द गुप्त की भूमिका का सूत्रपात 19वीं शताब्दी के 'सारसुधानिधि' और 'उचित वक्ता' ने कर दिया था, जिसे परवर्ती काल में 'हिन्द केसरी', 'कर्मयोगी', 'प्रताप', 'कर्मवीर', 'आज' और 'मतवाला' जैसी पत्र-पत्रिकाओं ने समृद्ध किया। 'शिवशम्भु के चिट्ठे' बालमुकुन्द गुप्त की राजनीतिक जागरूकता का ही केवल परिचय नहीं देता, बल्कि उनके निबन्धकार प्रतिभा का भी प्रमाण है। सन् 1909 ई. में जयशंकर प्रसाद की प्रेरणा से वाराणसी से इन्दु नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसके संपादक पंडित रूपनारायण पण्डित ही हिंदी साहित्य की स्वच्छन्द काव्यधारा को सामने लाया था। स्वच्छन्द धारा की नई दिशा को लेकर कलकत्ता से प्रकाशित पत्रिका है 'मतवाला'। हिंदी के स्वच्छन्दतावादी कवि निराला के हाथों इसका संपादन हुआ था। इसके संपादन मंडल में सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के अलावा महादेव प्रसाद सेठ, शिवपूजन सहाय, नवजादिक लाला और बेचन शर्मा उग्र थे। और तो और अधिकांश अंकों में निराला की कविता ही छपती थी। वैसे ही प्रेमचंद की 'हंस' पत्रिका, जिसमें शुरू में कविताएँ प्रकाशित करती थी, जैसे कामायनी के अंश इसके अनेक अंकों में प्रकाशित हुए थे। हिंदी जगत में बड़े-बड़े लेखक अपनी रचना हंस द्वारा प्रकाशित किए और आज भी इसकी प्रतिष्ठा को बनाए रखे हैं। इसी तरह 'मनोरम', 'चाँद', 'सुधा', 'मर्यादा', 'नई धारा', 'आलोचना', 'विश्वभारती पत्रिका', 'साहित्यकार', 'कहानी', 'ज्ञानोदय', 'राष्ट्रवाणी', 'आजकल', 'वसुधा', 'जया पथ', 'नई कहानियाँ' आदि पत्रिकाओं ने साहित्य क्षेत्र की शोभा बढ़ायी।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मोहन राकेश और कमलेश्वर ने 'सारिका' का संपादन किया तथा रघुवीर सहाय चिरकाल तक 'दिनमान' के संपादक रहे। भैरव प्रसाद गुप्त पहले 'नई कहानी' के संपादक रहे उसके बाद उन्होंने 'प्रारंभ' नामक पत्रिका का श्रीगणेश किया। भीष्म साहनी ने भी काफी समय तक 'नई कहानी' का सम्पादन किया। अमृतराय ने भी पहले 'हंस' और उसके बाद 'नई कहानी' पत्रिका का संपादन किया। ज्ञानरंजन ने उसी समय 'पहल' पत्रिका संपादन किया तो, महीप सिंह कई दशकों तक 'संचेतना' निकालते रहे हैं। मनोहर जोशी टी.वी. से जुड़ने से पहले 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के संपादक थे। अशोक बाजपेयी ने 'पूर्वग्रह' का संपादन किया। उसी प्रकार व्यंग्य लेखक हरिशंकर परसाई रामेश्वर प्रसाद गुरु के साथ प्रगतिशील पत्रिका 'वसुधा' के संपादक थे। शरद जोशी ने भी कुछ समय के लिए निकलनेवाली पत्रिका 'हिंदी एक्सप्रेस' का सम्पादन किया था। इतना ही नहीं नये-पुराने ऐसे बहुत से साहित्यकार हैं जो अपनी पत्रकारिता के माध्यम से साहित्य-सेवा करते आये हैं। जैसे सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, उदय प्रकाश, सुदीप, हिमांशु जोशी, रमेश उपाध्याय, सतीश जमाली, राजेन्द्र अवस्थी, कन्हैयालाल नन्दन, अवध नारायण मुद्‌गल, डॉ धनंजय वर्मा, केशव सोमदत्त, प्रभाकर श्रोत्रिय, बलराम, रमेश गौड़, मणि मोहिनी, मंगलेश डबराल, धीरेन्द्र अस्थाना, डॉ विनय, जगदीश चतुर्वेदी, अमरकांत, मार्कण्डेय, रमेश बक्षी, मधुकर सिंह आदि ने साहित्य को पत्रकारिता के साथ आगे बढ़ाया। वास्तव में साहित्य के विभिन्न विधाओं को अपने बलबूते पर जिन्दा रहने का रास्ता सबसे पहले पत्रकारिता ने ही दिखाया।

3.4 इलेक्ट्रोनिक मीडिया एवं साहित्य

बीसवीं सदी में विद्युत चुम्बकीय और रेडियो तरंग जैसी उपलब्धियाँ मिलीं, जिससे मनुष्य के समक्ष संचार रूपी नवीन शक्ति मिली। आज विचारों के संप्रेषण में पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य यान्त्रिक माध्यमों का प्रयोग अनिवार्य बन गए हैं।

3.4.1 रेडियो व साहित्य प्रसारण

पत्र-पत्रिकाओं की तरह आकाशवाणी का भी साहित्य संप्रेषण में अद्वितीय योगदान रहा है। रंगनाटक, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं से लेकर काव्य और यात्रा-वृत्तान्त के रूपान्तर रेडियो द्वारा प्रसारित होती है। वास्तव में रूपान्तर का उद्देश्य ही विभिन्न भाषाओं की रचनाओं को श्रव्य माध्यम द्वारा श्रोताओं तक पहुँचाना है। ऐसी बहुत सी विधाओं में रेडियो के माध्यम से विस्तृत हुई एक विधा हैं रेडियो नाटक।

1928 से रेडियो नाटकों का प्रसारण हुआ। इसकी शुरूआत क्षीरोदचद्र चटर्जी द्वारा लिखित बंगला नाटक 'मनतोष' का उर्दु रूपान्तरण से (नई दिल्ली केन्द्र से 3 जनवरी 1936 को) हुआ। नाटकों के अखिल भारतीय कार्यक्रम के अन्तर्गत पहला रेडियो नाटक 26 जुलाई 1956 को प्रसारित किया गया। शुरू में रेडियो नाटक रंगमंचीय नाटकों जैसे ही होते थे। राजानारायण मेहरा के नाटक 'नल दमयन्ती' प्रथम हिन्दी रेडियो नाटक माना जाता था जिसका प्रथम प्रसारण 13 नवंबर 1936 को हुआ। प्रसिद्ध रेडियो नाटक लेखक हैं - सआदत हसन मंटो, कृष्ण चन्दर, उपेन्द्र नाथ 'अशक', उदय शंकर भट्ट, डॉ रामकुमार वर्मा, सेठ गोविन्द दास, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, विष्णु प्रभाकर, चिरंजीत, मोहन राकेश, राजाराम शास्त्री, धर्मवीर भारती आदि। प्रसारण कार्यक्रमों का

लगभग 3.7 प्रतिशत समय रेडियो नाटकों और रूपकों पर दिया जाता है। 1980 तक आते, कुल कार्यक्रमों में रेडियो नाटकों के प्रसारण समय बढ़ा दिया गया।

प्रसारण की ओर देखे तो, रेडियो नाटक में पात्र की मनोदशाओं का चित्र शब्द के माध्यम से किया जाता है। विभिन्न रचनाकारों द्वारा रचित प्रमुख नाटकों में प्रमुख रेडियो नाटक हैं - 12 जनवरी 1939 में प्रसारित एफ ली माथुर की 'अन्धाजोगी', 8 अक्तूबर 1939 में प्रसारित एस सी सरकार की 'मंदिर', 12 जून 1940 में प्रसारित कृष्णलाल प्रेम की 'पूरन भगत', आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा 16 मार्च 1940 में प्रसारित 'सीता स्वीकार', जे एन श्रीवास्तव द्वारा 13 जुलाई 1946 में प्रसारित 'मालती माधव', एस एन चौबे द्वारा 1 अप्रैल 1947 में प्रसारित 'गंगावतरण', 17 मई 1947 में प्रसारित राज माथुर की 'पहाड़ के देवता', 24 मई 1947 में प्रसारित कृष्ण चन्द्र देव बृहस्पति की 'सागर मन्थन', हरीशचन्द्र खन्ना द्वारा 25 मई 1947 में प्रसारित 'कलिंग की विजय', एस एन चौबे द्वारा 14 जून 1947 में प्रसारित 'उद्धव संदेश', 'नवभारत' (सेठ गोविन्द दास और चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, 16 अगस्त 1947), 'विश्वामित्र' (उदय शंकर भट्ट, 1944), 'अन्तःपुर का छिद्र' (गोविन्द वल्लभ पंत, 1940), 'कलिंग विजय' (जगदीश चन्द्र माथुर, 1937), 'औरंगजेब की आखिरी रात' (डॉ रामकुमार वर्मा, 8 जून 1942), 'अंधायुग' (धर्मवीर भारती, 1954), 'विल्वमंगल की आँखें' (चिरंजीत, 31 मई 1963), 'घर का किवाड़' (निर्मला दर, 4 अक्तूबर 1963), 'हम हिन्दुस्तानी' (चिरंजीत, 29 नवंबर 1970), 'जहर का कोई रंग नहीं' (रेवती सरन शर्मा, 1974), 'रंगीन रोशनदान' (के पी सक्सेना, 1 जून 1979), 'विद्रूप' (मुद्राराक्षस, 26 फरवरी 1976),

'यक्षप्रिया' (कैलाश भारद्वाज 11 मार्च 1975), 'एक और अजनबी' (मृदुला गर्ग, 1977), 'एक फूल का पतझड़' (कांति देव, 22 फरवरी 1977), 'तीसरा डंक' (राजेन्द्र कुमार शर्मा, 16 फरवरी 1973), 'काले सूरज की शवयात्रा' (मुद्राराक्षस, 24 जुलाई 1975), कृष्ण चन्द्र शर्मा की 'कृष्ण प्रिया' (हिंदी नाटक)आदि।[11]

रंगनाटक की तुलना में कहानियों और उपन्यासों के रेडियो-रूपान्तर अधिक संख्या में प्रसारित किये जाते हैं। यह शायद इसलिए कि सभी साहित्यों में नाटकों की अपेक्षा कहानियों और उपन्यासों की रचना अधिक संख्या में होती रही है। इन रूपांतरों के माध्यम से रेडियो श्रोता कम समय में उत्कृष्ट कथा साहित्य से परिचित होते हैं, तथा उनसे आनन्द प्राप्त करते हैं। देखा जाए तो, पढ़ना कुछ कठिन काम है खासकर आम अनपढ़ लोगों के संबंध में, और सुनना अपेक्षाकृत सबके लिए आसान है।

कहानी पाठ्य साहित्य रूप होने पर लेखक पाठकों को ध्यान में रखकर रचना करता है। पाठ्य साहित्य की शक्ति और सीमाएँ कहानी पर भी जुड़ी हुई हैं। रेडियो इन सारी सीमाओं को लांघकर कहानीकार द्वारा किये जानेवाले सभी कार्य, संवादों तथा ध्वनियों के द्वारा संपन्न किये।

इसी तरह अन्य विधाएँ भी रेडियो के माध्यम से पुनर्जीवित हुए हैं, जैसे कविता की रेडियो प्रस्तुति हो या उपन्यास की, श्रव्य उपकरणों के माध्यम से इसकी सफल प्रस्तुति हुई है। गिरिजा कुमार माथुर की 'शब्द जो रोशनी हूँ' (हिंदी), सूर्यभानु गुप्त की 'निठल्लों की बस्ती में सूर्योदय' आदि रेडियो कविता-संग्रह है जो रेडियो द्वारा प्रसारित है।

---

[11] मीडिया और साहित्य : डॉ योगेन्द्र प्रताप सिंह, पृष्ठ 66

बड़ी सी बड़ी कहानी की घटनाओं को ध्वनि संकेत और संवादों के माध्यम से संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है। यह सब मात्र रेडियो में ही सम्भव है। न तो पत्रिका से संगीत निकल सकता है, और न अखबार से।

3.4.2 दूरदर्शन और साहित्य

इलेक्ट्रोनिक मीडिया का दूसरा सशक्त माध्यम दूरदर्शन अर्थात् टेलिविजन है जो सभी माध्यमों से सर्वाधिक लोक प्रिय एवं प्रचलित माध्यम रहा। दूरदर्शन से पूर्व लोकनाट्य एवं प्रिंट मीडिया ने साहित्य को आगे बढ़ाया तो, दूरदर्शन के आने से मीडिया के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन स्थापित किया तथा सूचना क्रान्ति का यह संवाहक भी बना। अन्य माध्यम जहां सीमित था वहाँ टेलिविजन अपने जादू चलाया। जब टेलिविजन में सीरियल की शुरुआत हुई, टेलिविजन प्रेषकों के लिए वह अत्यन्त लोकप्रिय विधा बन गई। धारावाहिक निर्माण के लिए बड़ी संख्या में साहित्यिक कृतियों को आधार बनाया गया था। लेकिन आगे चलकर दूरदर्शन ने अपने लिए धारावाहिक लेखक पैदा किया। 'ये जो है जिन्दगी', 'हमलोग', 'नुक्कड़', 'बुनियाद', 'रजनी' आदि कहानियाँ किसी कथाकृति पर आधारित न होकर दूरदर्शन के लिए लिखे गए सीरियल हैं। 'कथा सागर', 'दर्पण', 'एक कहानी', 'रागदरबारी', 'बसंती', 'कभी दूर कभी पास', 'सत्यजीत रे प्रजेन्ट्स', प्रेमचन्द की 'निर्मला', शरत बाबू की 'श्रीकान्त', देवकीनन्दन खत्री की 'चन्द्रकान्ता' आदि धारावाहिक सीधे साहित्यिक कृतियों को आधार लेकर दूरदर्शन से प्रसारित हैं। 'पूस की रात', 'कफन', 'सवा सेर गेहूँ', 'बूढ़ी काकी', 'ईदगाह', 'नमक का दारोगा', 'ज्योति', 'हज-ए-अकबर' आदि प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित टेलीफिल्में 'तहरीर' नाम से

दूरदर्शन के लिए गुलजार निर्देशित किया। 'गुलदस्ता' नाम से प्रेमचंद की ही कहानियों पर आधारित टेलिफिल्में हैं 'स्त्री पुरुष', 'चमत्कार', 'विनोद', 'एक आँच की कसर', 'माता का हृदय', 'लॉटरी', 'खुदाई फौजदार', 'मुक्ति मार्ग', 'नैराश्य' आदि। उसी प्रकार प्रेमचंद की कहानी 'कफन' को आधार बनाकर राजेश सिसोदिया ने एक टेलिफिल्म का निर्माण किया था।

हिंदी कथा साहित्य पर आधारित टेलीनाटक हैं, 'आधी रात के बाद' (शंकर शेष), 'पतझर' (शैलेन्द्र), 'ध्रुवस्वामिनी' (प्रसाद), 'लांछन' (प्रेमचंद), 'ज़रा सी भूल' (सुभाषिनी कपूर)। उसी प्रकार हिन्दी उपन्यासों पर आधारित हिंदी धारावाहिक हैं - अमृतलाल नागर की 'बूँद और समुद्र', मैत्रेयी पुष्पा की 'चाक', अज्ञेय की 'शेखर एक जीवनी', चन्द्रकांता की 'कथा सतीसर', लाला श्रीनिवास दास की 'परीक्षा गुरू', प्रेमचचंद की 'निर्मला', भीष्म साहनी की 'तमस' आदि। क्षेत्रीय भाषाओं के उपन्यासों पर बना धारावाहिक हैं - रविन्द्रनाथ टैगोर की 'गोरा' (बांग्ला में), वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्या की 'मृत्युंजय' (असमिया में), एस.के.पोटेकाट की 'कथा एक पत्थर की'(मलयालम में), विश्वनाथ सत्यनारायण की 'चन्द्रप्तुनी स्वपनम' (तेलुगु में), के.शिवराम कारंत की 'मुखोजिया कानासुगालू'(कन्नड़ में), गोपीनाथ मोहंती की 'माटी-मटाल' (उड़िया में), अखिलानंदम की 'कहां जा रहे हैं हम?' (तमिल में) आदि।[12]

वास्तव में दूरदर्शन अपने दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित और प्रभावित करने की असीम क्षमता रखता है। अतः साहित्य को टेलिविजन पर उतरने के पूर्व संवेदना एवं

---

[12] साहित्य और सिनेमा अंतःसंबंध और रूपान्तरण : विपुल कुमार, पृष्ठ 286

मनोरंजन की चुनौती को स्वीकारना होगा। माध्यमों की विवेचना करते हुए हमें यह स्पष्ट होता है कि नये जनसंचार माध्यम खासकर टीवी की संचार प्रविधि साहित्य को अपने अनुकूल करती है, बदलती है जैसे कि प्रिंट मीडिया ने कभी साहित्य को बदला था।

3.4.3 डिजिटल माध्यम : इन्टरनेट और साहित्य

प्रौद्योगिकी के विकास ने जो आश्चर्यजनक प्रगति की है, इससे अपनी रुचि का कार्यक्रम मनचाहे समय पर पा सकते हैं। सन् 2000 से वेबपोर्टल के अस्तित्व में आने के बाद भारतीय उपभोक्ताओं में इंटरनेट की प्रियता बढ़ गयी। इंटरनेट पर हिंदी का सफर रोमन लिपि से प्रारंभ होता है। फॉन्ट की समस्या से जूझते हुए यह देवनागरी तक पहुंची। आज यूनीकोड, मंगल जैसे यूनीवर्सल फॉन्टों ने देवनागरी लिपि को कंप्यूटर पर नया जीवन प्रदान किया। वर्तमान संदर्भ में इंटरनेट पर हिंदी साहित्य से संबंधित लगभग 70 ई-पत्रिकाएं हिंदी में उपलब्ध हैं साथ ही साथ भारत के लगभग सभी हिंदी दैनिक समाचार पत्र और पत्रिकाएं भी आज हिंदी यूनिकोड में इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। इसके अलावा 15 से अधिक हिंदी के सर्च इंजन हैं, जो किसी भी वेबसाइट का मिनटों में हिंदी अनुवाद उपलब्ध करा सकता है। यहां तक कि आज भारत के लगभग सभी सरकारी संगठनों की वेबसाइट भी हिंदी यूनिकोड में उपलब्ध हैं।

आज कल स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए ब्लॉग एक महत्त्वपूर्ण साधन बन चुका है। आलोक कुमार हिंदी के पहले ब्लागर हैं जिन्होंने ब्लाग 'नौ-दो-ग्यारह' बनाया। आज ब्लॉगों की संख्या एक लाख के ऊपर पहुंच चुकी है। आज के दैनिक समाचार पत्रों के ई-संस्करण पाठकों के लिए वरदान स्थापित हुए हैं। इसका यही कारण है कि, पाठक

थोड़े खर्च में ज़्यादा समाचार पत्र देख-पढ़ सकते हैं। सबसे उत्साहजनक बात यह है कि सोशल मीडिया - ट्वीटर, व्हाट्सएप, फेसबुक आदि भी हिंदी साहित्य को हाथो हाथ लिया है।

हिंदी साहित्य इंटरनेट पर सारी सीमाओं को लांघ कर अपना प्रसार कर रहा है। इसके साथ ही प्रकाशकों ने अपनी वेबसाइट बना रखी हैं, जिन पर अनेक रचनाएँ हमें घर बैठे मिल जाती हैं। इसका पहला प्रयास महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय (वर्धा) ने एक ऐसी वेबसाइट खोलकर किया। वे डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू डॉट हिंदी समय डॉट कॉम पर हिंदी के लगभग एक हजार रचनाकारों की रचनाओं का अध्ययन किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुंदर दास आदि की ग्रंथावलियों के साथ समकालीन रचनाकारों की रचनाओं को भी इसमें स्थान दिया। साथ ही भारत के अन्य विश्वविद्यालयों ने भी हिंदी के प्रसारण में अपना योगदान दिया है। देखा जाए तो, आज कल पच्चास प्रतिशत से भी ज्यादा हिंदी साहित्य डिजिटल मीडिया द्वारा ही लिखकर प्रकाशित हो रहे हैं।

3.5 साहित्य एवं चित्रपट

सिनेमा न केवल समाज को बल्कि समाज के प्रत्येक बिन्दुओं को अपनी तरफ आकर्षित किया है। सिनेमा ने अपने आरंभिक चरण में साहित्य से ही प्राण-तत्व लिया था। जैसे पहले पहल सिनेमा ने पौराणिक कथाओं पर आधारित फिल्में बनाई। सन् 1912 में मुंबई के रामचंद्र गोपाल टोन द्वारा निर्मित फिल्म 'पुंडलीक' को अपार सफलता मिली। यह महाराष्ट्र के ख्याति प्राप्त हिंदू संत के जीवन पर आधारित रामराव किर्तीकर

द्वारा लिखित नाटक पर आधारित थी। इसके बाद दादा साहब फाल्के द्वारा निर्मित 'राजा हरिश्चन्द्र' फिल्म प्रदर्शित की गई। हालांकि हरिश्चंद्र को भारतीय सिनेमा में पहली फिल्म मानी गयी, इसके पूर्व 'पुंडलीक' फिल्म का निर्माण हुआ था लेकिन इसका छायाकार भारतीय न होकर विदेशी होने के कारण इसे भारतीय सिनेमा में प्रथम स्थान नहीं मिला। पौराणिक चरित्रों को केन्द्र में रखकर बनाई गई फिल्में - भक्त प्रहलाद, शिव महिमा, विष्णु अवतार, रामायण, उत्तर रामायण, कालिया मर्दन, संत तुकाराम, संत नामदेव आदि बहुचर्चित फिल्में बनी। अब दर्शकों की रुचि पौराणिक घटनाओं से हटकर सामाजिक समस्याओं पर आकर रहे। सामाजिक फिल्मों के साथ-साथ ऐतिहासिक फिल्में भी आ रही थी जैसे 'सिकंदर', 'अनारकली', 'मुगल-ए-आलम' आदि। धीरे-धीरे साहित्य, फिल्म बनना शुरू हुआ। 1941 में ए.आर.कारदार ने प्रेमचंद की कहानी 'त्रिया चरित्र' को आधार बना कर 'स्वामी' नाम की फिल्म बनाई जो चली नहीं। यही हाल 1946 में प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' पर इसी नाम से बनी फिल्म का हुआ। बहुत सी साहित्यिक रचनाऐं फिल्मों में रूपान्तरित हुई, लेकिन आगे नहीं बढ़ी। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था', चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास 'धर्मपुत्र', रेणु की कहानी 'मारे गए गुलफाम' आदि इसके लिए उदाहरण है।

प्रेमचंद की मृत्यु के पश्चात सत्यजित राय ने 'शतरंज के खिलाड़ी' फिल्म बनाई, जिसने सभी की प्रशंसा आर्जित की। फिल्म संसार की विशालता के बावजूद साहित्य रचनाओं पर भारत में अपेक्षाकृत कम फिल्में बनी हैं। 'गोदान', 'गबन',

'चित्रलेखा', 'संघर्ष', 'साहब बीबी और गुलाम', 'तीसरी कसम', 'गाइड' और 'हजार चौरासीवें की मां' आदि साहित्यिक कृतियों पर बनी कुछ फिल्में हैं।

साहित्यिक कृतियों पर सबसे अधिक फिल्म बनाने वाले सत्यजीत राय फिल्म निर्देशक बनने से पहले स्वयं लेखक थे। इन्होंने रवीन्द्रनाथ टैगोर की दो, मुंशी प्रेमचंद की दो, विभूति भूषण वन्द्योपाध्याय की चार, ताराशंकर वन्द्योपाध्याय की दो और सुनील गांगुली की दो कहानियों पर फिल्में बनाईं। दस फिल्में तो स्वयं उन्होंने अपनी ही कहानियों पर बनायी। विभूति भूषण वन्द्योपाध्याय के उपन्यास पर आधारित फिल्म 'पथेर पांचाली' ने इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिलायी। सिनेमा के नवयथार्थवादी दौर में विमल राय की देन महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि उनके पहले भी साहित्यिक कृतियों पर फिल्में बनी हैं किन्तु अपने समसामयिक फिल्मकारों में वे पहले फिल्मकार हैं जिन्होंने भारत के श्रेष्ठ कथाकारों की अनेक रचनाओं को फिल्म-भाषा में रूपांतरित किया। उन्होंने शरतचन्द्र के उपन्यासों पर आधारित 'परिणीता', 'बिराज बहू' तथा 'देवदास' फिल्में बनाईं। सुबोध घोष के उपन्यास पर 'सुजाता', जरासंध के उपन्यास पर 'बन्दिनी' तथा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी पर 'उसने कहा था' आदि फिल्मों का निर्माण किया। इन्होंने हर फिल्मों के निर्माण में साहित्यिक कृतियों की मूलभावना को सुरक्षित रखने की कोशिश की है।

साहित्य को पर्दे पर रूपान्तरण करने में गुलजार की अद्वितीय भूमिका रही है। गुलजार ने कैमरे को कलम बना दिया। उनकी फिल्में देखने पर कविता और कहानी पढ़ने का अनुभव मिलता है। इसी प्रकार वासु भट्टाचार्य ने भी सशक्त कथानकों पर फिल्में बनाई हैं। ऐसे फिल्मकार की फिल्में कलम से भी ज्यादा शक्तिशाली सिद्ध हुई हैं।

अन्य भारतीय भाषाओं तथा बंगाली में शरतचन्द्र, विभूति भूषण वन्द्योपाध्याय, रवीन्द्रनाथ टैगोर, प्रमेन्द्र मित्र, समरेस वसु, विमल मित्र आदि की रचनाओं पर फिल्में बनी हैं। अंग्रेजी के कथाकारों की कहानियों पर आधारित कथावस्तु को ग्रहण करने में हमारे फिल्म निर्माताओं की सर्वाधिक रुचि रही है। जैसे शेक्सपियर की प्रसिद्ध 'कामेडी ऑफ एरर्स' की कहानी को 'भूलभुलैया' शीर्षक से रणजीत मूवीटोन नामक फिल्म कम्पनी ने फिल्माया। इससे पहले ही पारसी थियेटर कम्पनी 'माडर्न थियेटर' ने शेक्सपियर की एक अन्य कृति 'टेमिंग ऑफ दि श्रू' को रजत पट पर उतारा। जे.जे. मॉडन निर्देशित इस फिल्म का नाम था 'हठीली दुल्हन'। इसके बाद शेक्सपियर की महान् ट्रेजडी 'हेमलेट-डेनमार्क का राजकुमार' को सन् 1935 में रूपहले पर्दे पर प्रस्तुत किया गया। पिता की मौत का बदला लेने के राजकुमार हेलमेट के द्वन्द्व को 'खून का खून' नाम से फिल्माया गया। सोहराब मोदी ने इस फिल्म का सफल निर्देशन किया था। शेक्सपियर की अन्य सुप्रसिद्ध कृति 'टेम्पेस्ट' को 'न्यू-थियेटर्स' कलकत्ता ने 'आँधी' नाम से फिल्मांकन किया। उसी प्रकार 'रोमियो और जूलिएट' के प्रेमाख्यान को सन् 1947 में निर्माता-निर्देशक अख्तर हुसैन ने फिल्माया। सर वाल्टर स्काट अंग्रेजी के प्रख्यात ऐतिहासिक उपन्यासकार थे, जिनके महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'लेडी ऑफ दि लेक' पर मोहन पिक्चर्स ने 1942 में 'सरोवर की सुन्दरी' नामक फिल्म बनायी, जिसका निर्देशन ए.एम.खान ने किया था।

साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों को दर्शक स्वीकार करेगा या नहीं, ऐसी फिल्मों की सफलता शंका में थी। प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' अथवा कहानी 'मिल मजदूर' और 'शतरंज के खिलाड़ी' पर बनी फिल्म हो, या रेणु के उपन्यास पर बनी

फिल्म 'तीसरी कसम' हो अथवा मुक्तिबोध की कहानी 'सतह से उठता हुआ आदमी' हो सभी फिल्में असफल रही हैं। नौवें दशक में भी कुसुम अंचल के उपन्यास पर बनी फिल्म 'पंचवटी', उदय प्रकाश की कहानी पर बनी फिल्म 'उपरांत' तथा योगेश गुप्त के उपन्यास 'उनका फैसला' पर बनी फिल्म 'अंतहीन' नहीं चली। दूसरी ओर आर.के.नारायण के उपन्यास 'गाइड' पर बनी फिल्म अत्यन्त सफल रही। शरतचन्द्र के 'देवदास' पर तो तीन फिल्में बनीं और तीनों सफल रहीं।

कई बार लेखक अपनी ही कृतियों पर निर्मित फिल्म से सन्तुष्ट नहीं होते हैं और फिल्मकार पर यह आरोप लगाते हैं कि वे रचना की आत्मा को मारकर फिल्म बनाता है। ऐसा नहीं है कि श्रेष्ठ साहित्य पर श्रेष्ठ फिल्में नहीं बनायी जा सकती हैं, श्रेष्ठ साहित्य पर अच्छी फिल्में बन सकती हैं किन्तु सभी श्रेष्ठ साहित्य पर अच्छी फिल्में बनें यह अनिवार्य भी नहीं है। इस दौर में मणिकौल ने मोहन राकेश की कहानी पर आधारित 'उसकी रोटी' (1970) तथा विजयदान देथा की कहानी पर आधारित फिल्म 'दुविधा' (1979) का निर्माण किया। कुमार शाहानी ने निर्मल वर्मा की कहानी का फिल्म रूपांतरण 'मायादर्पण' (1972) नाम से किया। इसके पहले बासु चटर्जी राजेन्द्र यादव के उपन्यास पर 'सारा आकाश' (1969) बना चुके थे। उन्होंने ही मन्नू भंडारी की कहानी 'यह सच है' 'रजनीगंधा' नाम से 1974 में फिल्म बनाया।

मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' पर मणिकौल ने 1972 में फिल्म बनाई है। प्रेमचन्द्र की प्रसिद्ध कृति 'कफन' पर तेलगु में 1977 में फिल्म बनी। रमेश बक्षी के उपन्यास पर आधारित फिल्म '27- डाउन' को 1973 में अवतार कौल ने

बनाया। राजेन्द्र सिंह बेदी की कहानी पर एम.एस.मैटयू ने 'गरम हवा' (1973) का फिल्मांकन किया। कमलेश्वर की कहानी पर शिवेन्द्र सिन्हा ने 'फिर भी' (1971) नामक फिल्म बनायी। शिवराम कारंत के उपन्यास पर बी.बी.कारंत ने 'चौमन दुडी' (1975) बनाया। इसी प्रकार यू.आर.अनन्तमूर्ति की कथा पर बनी फिल्म 'घटश्राद्ध' (1977) का निर्देशन गिरीश कासरवल्ली ने किया।

देखा जाए तो, सातवें दशक तक इन फिल्मों का जबर्दस्त दौर था, लेकिन अगले दशक के साथ ही इनकी आभा नष्ट होने लगी और हिन्दी कला फिल्मों की अकाल मृत्यु की घोषणा हो गई। फलतः ऐसी फिल्में मास मीडिया के बजाय क्लास मीडिया के रूप में बदल गई। उसी वक्त फीचर फिल्में सामाजिक-सांस्कृतिक क्रान्ति लाते हुए सामने आयी। दक्षिण भारत के एस.एस.वासन द्वारा बनाई चन्द्रलेखा फिल्म से सिनेमा की दुनिया में बॉक्स-ऑफिस की एक नई ट्रेंड शुरू हुई। कालान्तर में बड़े बजट और एक से अधिक बड़े-बड़े सितारों वाली फिल्में बनने लगीं जो अभी भी जारी है।

3.6 साहित्य के नए परिवेश में मीडिया

साहित्य के नए परिवेश में मीडिया ने अपना स्थान पहले से बनाया। विषयों के चयन में साहित्य मीडिया को नहीं भूला। कविता, कथा साहित्य, चलचित्र आदि में मीडिया को आधार बनाया।

3.6.1 कविता में मीडिया

कविता अनुभूति की सार्थक अभिव्यक्ति करती है। पहले कविता केवल सुनी और पढ़ी जाती थी अब कविता आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से सुनी-देखी जा सकती है।

इतना ही नहीं आज इन्टरनेट पर भी काव्यगोष्ठी संभव है, जहाँ कविता पढ़ने का कुछ अलग ही अनुभव है। यह चिन्तनीय बात है कि विभिन्न संचार साधनों एवं माध्यमों के साथ कविता का रिश्ता किस तरह रूपायित हुआ है एवं इसने कविता को किस तरह प्रभावित किया है।

रघुवीर सहाय, अरुण कमल, उदय प्रकाश, आलोकधन्वा, शहरयार, आश करण अटल आदि कवियों ने अपनी कविता के ज़रिए मीडिया के प्रभाव को उद्‌घाटित किया है। मीडिया संदेश वाहक के रूप में समाज में आयी, लेकिन आज मीडिया में कौन-सी खबर महत्त्वपूर्ण है, और कौन-सी गैर-महत्त्वपूर्ण इसे मीडिया मालिक तैय करती है। इस दृष्टि से अरुण कमल की 'खबर' शीर्षक कविता ने कैसे महत्त्वपूर्ण समाचार के बदले गैर-महत्त्वपूर्ण समाचार का प्रसारण होता है इसका खुला चित्रण किया है। प्रस्तुत कविता में किश्ता गौड़ और भूमैया नामक पात्र आन्ध्र प्रदेश के नक्सलवादी आन्दोलन से जुड़े हुए थे जिन्हें आपातकाल के दौरान फाँसी दे दी गई। लेकिन यह खबर मीडिया में कहीं नहीं आयी बल्कि गैर-महत्त्वपूर्ण खबरें अखबार में आता है। इस तरह एक्सक्लूसिव खबरों के पीछे भागती मीडिया का चित्रण 'खबर' कविता में हम देख सकते हैं। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

''अखबारों में खबर थी :
कैलिफोर्निया की एक कुतिया ने तेरह बच्चे
एक साथ जने।
अखबारों में खबर थी :
युवराज ने कंगालों में कम्बल बाँटे।

एक खबर जो कहीं नहीं थी :
किश्ता गौड़ को फाँसी हो गयी
एक खबर जो कहीं नहीं थी :
भूमैया को फाँसी हो गयी।''[13]

अर्थात् जनता को समाज की खबरों से दूर रखकर गैर-महत्त्वपूर्ण खबरों की ओर लगा दिया है। फलस्वरूप जनता इन्हीं खबरों के आदी होते हैं। इस तरह मीडिया की गैर-जिम्मेदारी प्रवृत्तियों को आलोकधन्वा ने अपनी कविता 'दुनिया रोज़ बनती है' में व्यक्त किया है। पंक्तियाँ हैं -

''वे लोग पेशेवर ख़ूनी हैं
जो नंगी ख़बरों का गला घोंट देते हैं
अख़बार की सनसनीखेज़ सुर्खियों की आड़ में
वे बार-बार उस एक चेहरे के पालतू है
जिसके पेशाबघर का नक़्शा मेरे गाँव के नक़्शे से बड़ा है।''[14]

प्रस्तुत पंक्तियों के ज़रिए कवि ने मीडिया वालों की नैतिकता व उनकी प्रवृत्तियों पर आक्रामक रूप से प्रहर किया है। पहले अखबार छपकर बिकते थे, और अब बिकर छपते हैं। अतः आज के अखबार ख़बरों से ज्यादा सनसनीखेज़ सुर्खियों को चाय के साथ परोसने में लगे हैं। मीडिया कर्मियों पर आने वाले प्रेजर से ही वे ऐसी ख़बरों के पीछे हैं। रमेश प्रजापति की 'अखबार के समन्दर से' नामक कविता में कवि ख़बरों की तलाश करनेवाले मीडिया कर्मी का चित्र हमें देते हैं।

---

[13] अपनी केवल धार (कविता संग्रह); 'खबर' (कविता); अरुण कमल, पृ.सं.15
[14] 'हिन्दी कविता अभी, बिलकुल अभी'; नन्दकिशोर नवल, पृ.सं.132

''सड़कों पर
गलियों में
दौड़ते हैं अखबार वाले
सुबह-सुबह बासी मुँह
छोड़ जाते हैं हमारे दरवाजे पर
ताज़ा-ताज़ा उबलती खबरें''[15]

यहाँ कवि ने अखबारवाले कैसे ताज़ा-ताज़ा ख़बर हमारे सामने लाने केलिए सड़कों, गलियों में दौड़कर सुबह-सुबह हमारे दर्वाजे तक लेकर आते हैं, इसका वर्णन किया है। सभी वर्गों को बढ़ावा देनेवाली मीडिया भी कभी कभी दलितों जैसे हाशिएकृत वर्गों के पक्ष में आवाज़ उठाने तक हिचकती हैं। सिर्फ सेलिब्रिटीज का दामन थामे मीडिया अपनी टीआरपी बढ़ाने के चक्कर में भला दलितों पर ध्यान क्यों देगा। जयप्रकाश लीलवान मीडिया के बाज़ारूपन पर कटाक्ष करते हुए लिखते हैं -

''हम देश में
आज भी
मजदूरों, दलितों
और भूमिहीनों की बात कहने वाला
कोई भी चैनल
अस्तित्व तक में
नहीं आने दिया गाया है।''[16]

आज के ज़माने में पत्रकारिता की नीति भी बदल चुकी है। मीडिया में पत्रकारों के माध्यम से गलत खबरें भी आज प्रसारित की जा रही हैं। उदय प्रकाश जी की 'और

---

[15] पूरा हँसता चेहरा; 'अखबार के समन्दर'; रमेश प्रजापति, पृ.सं.37

[16] भूमण्डलीकरण और समकालीन हिंदी कविता; डॉ श्यामबाबू शर्मा, पृ.सं.390

पत्ते गिर रहे हैं इस तरह लगातार' शीर्षक कविता में इस तथ्य को प्रभावी ढंग से चित्रित किया है। पंक्तियाँ हैं-

''आप पत्रकार हैं
आप कहाँ से आ रहे हैं
और कहाँ जा रहे हैं
क्या खबर है आपके पास
और किसके लिए है वह खबर
आपकी आँखें कहाँ हैं
और क्या वे आपकी ही आँखें हैं।''[17]

यहाँ पत्रकार की विश्वसनीयता पर कवि ने प्रश्नचिह्न लगाया है। मीडिया की तेज़ कवरेज का नया अंदाज धीरे-धीरे अनैतिकता में बदल रहा है। आशा करण अटल की कविता 'मीडिया:पार्ट-1' में इसका व्यक्त चित्रण हमें मिलता है।

''खबर थी-
एक बीमार नेता ने, लंदन में
अंतिम साँस ली।
इधर यमदूत नेता को लेकर
नरक पहूँचे भी नहीं
उससे पहले चैनल का रिपोर्टर
लंदन पहूँच गया अपनी टीम लेकर
और नेता के बेटे का
इंटरव्यू लिया।''[18]

---

[17] रात में हारमोनियम; 'और पत्ते गिर रहे हैं इस तरह लगातार-1' ; उदय प्रकाश, पृ.सं.55

[18] आज की कविता; 'मीडिया:पार्ट-1'; आश करण अटल, पृ.सं.278

इस तरह मीडिया जगत में हो रहे कार्यक्रमों को साहित्य द्वारा चित्रित करके समकालीन हिंदी कवियों ने मीडिया को साहित्य के साथ जोड़कर रखने का प्रयास किया है।

3.6.2 कथा साहित्य में मीडिया

कहानी हो या उपन्यास दोनों जनसामान्य की संवेदनाओं को जल्दी ही समझ जाते हैं। चकाचौंध भरी मीडिया की इस दुनिया ने व्यक्ति जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया है, खासकर मीडिया के क्षेत्र में काम करनेवालों को। शैलेश मटियानी, पंकज बिष्ट, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, निर्मल वर्मा, धीरेन्द्र आस्थाना, गिरीश पंकज, जगदीश चतुर्वेदी, मृणाल पाण्डे आदि लेखकों ने अपने उपन्यासों के ज़रिए मीडिया जगत के तमाम अन्तर्सत्यों, घटनाओं और पहलुओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

अशोक अग्रवाल का उपन्यास 'वायदा माफ गवाह' में उन्होंने पत्रकारिता जगत् के भीतर की विसंगतियों, कूटनीतियों तथा राजनीतियों का चित्रण किया है। बाहर से यह मीडिया जगत अच्छी संस्था है, लेकिन इसके भीतर के सब कुछ बेहद रहस्यमय और उलझन भरा होता है। पत्रकारिता का यह संकट मुख्य रूप से आज़ादी के बाद पनपा है। यहाँ मालिक के इच्छानुसार पत्रकारों को काम करना पड़ता है। उपन्यास के नायक प्रधान के इशारे पर चलता रहता है वह कभी भी अन्य लोगों की तरह मालिक से सीधी लड़ाई लड़ने केलिए तैयार नहीं है। इसके पात्र आदि से अन्त तक आत्माभिव्यक्ति की छटपटाहट में रहते हैं। इसके संबंध में अमर कहता है, ''मैं इसी तरह छटपटाता रहूँगा,

कहीं भाग नहीं सकूँगा और एक दिन जड़ होकर रह जाऊँगा।''[19] देव, जगदीप, मिस जायसवाल आदि कर्मचारी जनता के सामने पत्रकारिता जगत की विसंगतियों की पोल खोलना चाहता है, किन्तु उसके पहले ही प्रधान उन्हें दफ्तर से हटा लेते हैं। प्रधान के अनुसार जिसका अंग सड़ गया है उसे काटकर फेंक देना ही उचित है। इस तरह मालिक के खिलाफ जानेवाले को एक-एक करके नौकरी से हटालेता है। उपन्यास के अंत में 'मैं' यानी 'अमर' की सेवाएँ भी ऑफिस मेमोरेंडम द्वारा समाप्त कर दी जाती हैं।

हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक निर्मल वर्मा कृत 'रात का रिपोर्टर' पत्रकारिता पर केन्द्रित उपन्यासों में प्रमुख रहा है। उपन्यास के पात्र रिशी आपतकाल की भीषण परिस्थिति से त्रस्त, अभिव्यक्ति की अस्वतंत्रता से पीड़ित दमित पत्रकारों का प्रतिनिधित्व करता है। आम जनता, लेखक, साहित्यकार, पत्रकार आदि विभिन्न स्तर के लोग किसी-न-किसी प्रकार तत्कालीन समय से त्रस्त थे। मीडिया का भी बुरा समय था। आपातकाल के साथ सेंसरशिप लागू होने के बाद देश के सभी अखबारों ने मिलजुलकर प्रकाशन बन्द किया तो राष्ट्र का हाल बिगड़ने लगा। 'रात का रिपोर्टर' उपन्यास ऐसी एक पुनरवलोकन एवं पुनर्मूल्यांकन को प्रस्तुत करता है, जिसके मूल में रिपोर्टर रिशी की आन्तरिक संकट को ही दिखाया गया है। रिपोर्टर पर बाहरी शक्तियों का प्रभाव व दबाव हमेशा बना रहता है। रिपोर्टर के बारे में राय साहब का कथन था ''अच्छा रिपोर्टर वह है जो कर्म के सम्मोहन से बच सके।''[20] वास्तव में सत्य की खोज करना पत्रकार का

---

[19] 'वायदा माफ गवाह'; अशोक अग्रवाल, पृ.124

[20] 'रात का रिपोर्टर'; निर्मल वर्मा, पृ.23

सामाजिक सरोकार है। इसके लिए खतरा भी उठाना पड़ता है। रिशी उन्हीं रिपोर्टरों में से हैं, जो सम्मोहन से बचते हुए तथ्य के माध्यम से सत्य की ओर जाते हैं।

मूल रूप में लेखक रहे व्यक्ति, पेशे के तौर पर सम्पादक बनने पर होने वाले आत्मसंघर्ष की अभिव्यक्ति करता है शरद देवड़ा का उपन्यास 'कथा एक सम्पादक की' में। उपन्यास का केन्द्र पात्र आकाश लेखक-संपादक हैं। वे मूल रूप में लेखक हैं पेशे के तौर पर सम्पादक। लेकिन सम्पादन की व्यस्तताओं के कारण आकाश लिख नहीं पाता। उसका मानसिक संघर्ष अंत में खुल जाता है। वह बताता है, ''लिखना कहाँ हो पाता है, भाई साहब! इस पत्रकारिता की व्यस्तता के कारण समय ही नहीं मिल पाता। जब मन बहुत बेचैन हो उठता है, तो रातों को जागकर कुछ छिटपुट चीज़ें लिख लेता हुँ; लेकिन उतना सन्तोष नहीं होता। आखिर, जीवन का लक्ष्य तो लेखन ही है, कई बार मन होता है कि यह नौकरी छोड़ दूँ और लेखन में ही पूरा समय लगाऊँ..और किसी दिन, आप सचमुच सुनेंगे मैंने नौकरी छोड़ दी है।''[21] लेखन और सम्पादन के बीच का यह आत्मसंघर्ष उसे निरन्तर कचोटता रहता है। इसमें लेखक के अनुभव मात्र नहीं बल्कि समकालीन पत्रकारिता की विसंगतियों की खोज भी हुआ है। पत्रकारिता से जुड़ी एक और उपन्यास है 'यह जो दिल्ली है'। उपन्यास का केन्द्र पात्र सत्यकाम पत्रकार के रूप में जब नौकरी करता है तो उसे अभिव्यक्ति की आज़ादी नहीं थी, वह वही लिखते थे जो मालिक चाहते हैं। उसे लगता है, ''पत्रकारिता यानी.. सीधे-सीधे मज़दूरी.. जेल.. चारदीवारी।..... वह इतने पैसे देगा कि आज रोटी खा लो और कल फिर वही

---

[21] 'कथा एक सम्पादक की'; शरद देवड़ा, पृ.87

मज़दूरी..जिस दिन मज़दूरी नहीं की, रोटी नहीं....''[22]। इस प्रकार *प्रकाश मनु* अपने इस उपन्यास के ज़रिए पत्रकारिता संसार की अन्धाधुन्ध ज़िन्दगी की पोल खोलती हैं। 'गुज़र क्यों नहीं जाता' धीरेन्द्र आस्थाना का बहुचर्चित उपन्यास है, जिसमें नायक सोमेन्द्र पेशे से पत्रकार हैं, उसके जीवन संघर्ष के यथार्थ को गम्भीर व मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है। देश को राह दिखाने वाले पत्रकार भीतर से कितने खोखले हैं, उनका चारित्रिक पतन किस हद तक हो चुका है, उस दुनिया में किस तरह के षड्यन्त्र रचे जाते हैं, यह उपन्यास उन सभी का पोल खोलता है। शैलेश मटियानी का उपन्यास 'आकाश कितना अनंत है' में भी ईमानदार, निडर, सिद्धान्तों के प्रति समर्पित, आम जनता के दुःख दर्द से जुड़े पत्रकार के संघर्ष को दिखाया गया है। विश्वंभरनाथ उपध्याय कृत उपन्यास 'दूसरा भूतनाथ' में खोजी पत्रकारिता का विस्तृत चित्रण हुआ है। एक खोजी पत्रकार को खोजी पत्रकारिता करते हुए किन-किन मुशकिलों का सामना करना पड़ेगा, इसकी प्रस्तुति इसमें हुई है।

इनके अलावा धर्मेन्द्र गुप्त का 'नगरपुत्र हँसता है', पंकज बिष्ट का 'लेकिन दरवाजा', गिरीश पंकज का 'मिठलबरा की आत्मकथा', जगदीश चतुर्वेदी का 'कनॉट प्लेस', अरविंद तिवारी का 'शेष अगले अंक में', मृणाल पाण्डे का 'रास्तों पर भटकते हुए', दयानन्द पाण्डेय का 'अपने अपने युद्ध', राजेन्द्र मोहन भटनागर का 'सबक' आदि उपन्यास में पत्रकारिता संसार के तमाम अन्तर्सत्यों, घटनाओं, पहलुओं को प्रस्तुत किया है।

---

[22] 'यह जो दिल्ली है'; प्रकाश मनु, पृ.25

3.6.3 कहानी में मीडिया

हर खबर को सनसनीखेज बनाकर प्रस्तुत करना आज भारतीय मीडिया की नियति बन गई है। इस तरह अपराध, हत्या-बलात्कार, भूत-प्रेत खबरें इसमें स्थान लेने लगा तथा कोमल संवेदनाओं का स्थान कम हो गया। पंकज श्रीवास्तव, शिवा शंकर पांडेय, पंकज मित्र, विजय विद्रोही, विनोद कापड़ी जैसे लेखकों ने अपनी कहानियों में मीडिया के बदलते चेहरे के साथ मीडियाकर्मियों की समस्याओं को भी दिखाने का प्रयास किया है।

पंकज श्रीवास्तव की कहानी 'दिव्या, मेरी जान' में पत्रकार पर हो रहे दबाव और चैनलों की अनैतिकता का चित्रण दिखाया है। कहानी के नायक अमित चैनल रिपोर्टर बनने के बाद उसे लगता है कि, चैनल को रिपोर्टर कम क्रियेटर ज्यादा चाहिए। वह हर सुबह नयी-नयी खबरों की तलाश में रहता है, मन ही मन वह सोचता भी है कि ''शहर का हाल ही ऐसा था कि कुछ भी ऐसा नहीं हो रहा था जिस पर चैनल 'खेल' सके। न किसी नेता के ख़िलाफ बलात्कार का आरोप लग रहा था, न किसी बड़े घर की बहू का क़त्ल ही हुआ था.....।''[23] अर्थात् मीडिया को रेटिंग वाली न्यूज़ ही हमेशा चाहिए। वहाँ न्यूज़ की विश्वसनीयता हो या न हो, उनका एक मात्र लक्ष्य है, मीडिया द्वारा मज़ेदार ख़बरों को परोसकर टीआरपी बढ़ाना। ऐसे में न्यूज़ की महत्ता पर ध्यान नहीं देगा।

---

[23] 'दिव्या मेरी जान'; पंकज श्रीवास्तव, पृ.204

विजय विद्रोही की कहानी 'प्रेत पत्रकारिता' में उन्होंने अनैतिक व अविश्वसनीय ख़बरों को भेजकर रेटिंग बढ़ानेवाले चैनल का चित्रण करके मीडिया जगत की नई रण नीति को हमारे सामने दर्शाया है। कहानी के पात्र रतन न्यूज़ चैनल के अपराध ब्यूरो में नौकरी प्राप्त करने पर बहुत खुश था, लेकिन उसे भी अंत में मीडिया के इशारों पर चलना पड़ता है। एक बार दिल्ली के पास के एक गांव से एक स्टोरी रतन को मिली। सौतेले बाप ने बेटी का बलात्कार किया। तभी ब्यूरो प्रमुख ने रतन से कहा - " 'सौतेले' शब्द को हटा देना। इससे कहानी की धार कम हो जाएगी।"[24] रतन का दिल नहीं माना, फिर भी कलम चलानी पड़ी। टीआरपी के चक्कर में आज चैनलवाले क्या-क्या दिखा रहे हैं? यह सोचने की बात है।

चैनल की नैतिकता में इतनी चूक आ गयी है कि लोगों का जीवन भी मीडिया को तुच्छ लगने लगा है। विनोद कापड़ी की कहानी 'कितने मरे' में मीडिया व मीडिया के लोगों के नष्ट हो रहे मानवीय मूल्यों को दिखाया गया है।

इसका नायक भगवान सिंह न्यूज़ चैनल की ओबी वैन चलाता है। किसी भी घटना की पहली तस्वीरें स्टूडियो तक पहूँचाने में ओबी वैन की बड़ी भूमिका है। भगवान सिंह न्यूज़ चैनल के प्रति इतना समर्पित था कि उसने अपनी ज़िन्दगी को ही चैनल केलिए न्योचावर कर दिया। फिर भी चैनल वालों को कोई परवाह नहीं। ऊपर से उसी वक्त ठणे के पास एक बस नदी में गिर जाने पर जल्दी से दूसरी वैन तैयार कर देता है। यहाँ मनुष्य के जीवन का नहीं बल्कि पहले न्यूज़ दिखाने की होड़ ही दिखाई देती है।

---

[24] 'प्रेत पत्रकारिता'; विजय विद्रोही, पृ. 55

दरअसल, टीवी न्यूज़ का रुझान इस कदर बाज़ारपरस्त हो गया है कि उसे न तो अपने दर्शकों की चिन्ता रह गयी है और न ही अपनी विश्वसनीयता की।

3.6.4 फिल्म में मीडिया

अक्सर फिल्मों में कोई घटना होती है और उसे कवर करने के लिए पत्रकार की उपस्थिति हमेशा रहती हैं। उनके अजीबोगरीब सवाल और सनसनी बनाने के लिए किसी भी हद तक जाने के जुनून को भी फिल्म द्वारा हमेशा दर्शाने की कोशिश भी देखी जा सकती है। खासकर बॉलीवुड में, यहां कई ऐसी फिल्में हैं जो मीडिया और पत्रकारों पर प्रकाश डालती हैं। 'पेज 3', 'पीपली लाइफ', 'नायक', 'रण', 'धमाका' आदि बॉलीवुड की ऐसी कुछ फिल्में हैं जो भारतीय मीडिया के ऊपर बनाई गई है। इन फिल्मों में पत्रकारों के कामकाज और मीडिया इंडस्ट्री का भरपूर चित्रण है।

'पेज 3' मधुर भंडारकर द्वारा निर्देशित और बॉबी पुष्करना और कविता पुष्करना द्वारा निर्मित 2005 की एक भारतीय ड्रामा फिल्म है, जो मुंबई शहर की संस्कृति और मीडिया के बारे में है। 'पेज 3' अखबार का वह रंगीन पेज है जिसमें सेलिब्रिटी गपशप और समाज की खबरें छपता है। पूरे अखबार लोग पढ़े या न पढ़े पेज 3 हर कोई पढता है। इसके लिए रोज़ाना पार्टी कवर करना, देर रात घर लोटना, सुबह उन पार्टीस के बारे में लिखना सब पत्रकार पर सौंपा या थोपा गया काम है।

फिल्म की नायिका माधवी शर्मा 'फैशन डुडे' का पत्रकार है और पूरी कहानी व पात्र उसी के इर्द-गिर्द घूमता है। उसकी अखबार से पत्रकार को यही सलाह देता है कि ऐसे लोगों के बारे में लिखो जिनके पास बहुत सारे पैसे हो। पत्रकारिता अब पेड (Paid)

व्यवसाय बनता जा रहा है। वही देते हैं, जो लोग चाहते हैं। आज का ज़माना ऐसा हो गया है कि, लोग खुद के पैसे से पेज खरीदना और ख़्याति बढ़ाना चाहते हैं। उन्हीं केलिए ही यह दावत और पेज 3 रखे हैं। कुछ लोग दावतों में ऐसे गले मिलते हैं जैसे बचपन के बिछुडे हुए भाई या बहन हो। कुछ लोग सेलिब्रिटी से ठीक उसी वक्त मिलते हैं जब फ़ोटो क्लिक करते हैं। चाहे उन्हें कोई पसंद करें या न करें। पर वहां भी मीडियावालों से हर कोई दोस्ती बनाकर रखता है।

पत्रकार केलिए कोई रविवार नहीं होता है। उन्हें हमेशा नई स्टोरी की तलाश रहती हैं। अखबार का मालिक चाहते हैं पेज 3 के पेज बढ़ाया जाए, यहां पर पत्रकार का सामाजिक दायित्त्व का ह्रास होता देखा जा सकता है। संपादक को दो कौड़ी के न्यूज़ केलिए ढाई सौ शब्द से ज्यादा खर्च करना अच्छा नहीं लगता है। पर पेज 3 के लिए कोई शब्द सीमा नहीं है। भुगतान भी पत्रकार को कम ही देता है। आज कल के पत्रकारों की स्थिति को फिल्म में बखूबी दिखाया है। पत्रकार चाहे कितना भी मेहनत करके न्यूज़ लाया हो संपादक उसे काट कर कम कर देता है। ऐसे में न्यूज़ के सारे आशय ही नष्ट हो जाते हैं। कभी-कभी विज्ञापन आने से भी न्यूज़ कम करते हैं। ऐसे में फिल्म की नायिका को पेज 3 में लिखना मनोरंजन ही लगता है न कि पत्रकारिता। नायिका कुछ लेखन में कुछ सार्थकता लाना चाहती है। लेकिन पेज 3 में ऐसा कुछ कर नहीं पाती। उसकी लाख कोशिशों के बावजूद उसे अपराध रिपोर्टिंग में काम करने देती है। वहां आकर वह दावतों के रिपोर्टिंग के अलावा समाज में हो रही खबरों को ढूंढने और कवर करने लगी।

उसी दौरान वह ऐसे-ऐसे सेलिब्रेटी से मिलती है जो कैमरे के बाहर सामाजिक कार्य करता है और कुछ सेलिब्रेटी जो पीठ-पीछे बच्चों का यौन शोषण करते हैं। ये सारी ख़बरें नायिका रिपोर्ट करके संपादक को देती है वह उस ख़बर को मालिक को देता है। मालिक फौरन ख़बर को वहीं दबा देता है और ऐसी न्यूज़ देने पर माधवी को नौकरी से निकाल देता है। नौकरी से ऐसे फयर किया कि कहीं और जगह नौकरी नहीं मिलती। वहीं से उसे एक बड़ी सीख मिली कि ''सच्चाई को बताना ज़रूरी है लेकिन उसे किस तरीके से बताई जाए यह समझ लेना उससे भी ज़रूरी है। ईमानदारी के साथ-साथ समझदारी का होना भी ज़रूरी है।'' फिल्म का सबसे बड़ा संदेश भी यही है कि "We have to be in the system to change the system." अर्थात् व्यवस्था को बदलने केलिए पत्रकार को उसी व्यवस्था के अंदर रहना ही होगा। तभी व्यवस्था और समाज बदल सकता है। फिल्म ने तीन राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार जीते, जिसमें सर्वश्रेष्ठ फिल्म के लिए गोल्डन लोटस पुरस्कार भी शामिल है।

पत्रकारिता और पत्रकार के ऊपर बनायी गयी दूसरी फिल्म है 'पीपली लाइव'। 2010 में आयी यह फिल्म महंगाई के दौर में परेशान किसानों की मुद्दे को मीडिया द्वारा देश के लोगों तक पहुंचाता है तथा मीडिया में होने वाली टीआरपी रेस के बारे में इसमें व्यक्त किया है। 'नायक' फिल्म में पत्रकार और मीडिया को हीरो की तरह दिखाया गया है, जो हर हाल में सिस्टम के खिलाफ जाकर लोगों को जागरूक करता है। वैसे ही 2010 में रिलीज हुई 'रण' फिल्म में गलत खबरों से होने वाले नुकसानों के बारे में दिखाया गया है। मीडिया में होने वाली टीआरपी रेस और चैनलों के कॉम्पिटिशन के बारे

में बताने वाला कार्तिक आर्यन की फिल्म है 'धमाका'। 2021 में निकली इस फिल्म में कैसे एक स्टोरी किसी पत्रकार को स्टार बना देती है और कैसे वही एक स्टोरी उसे लोगों की नजरों से गिरा देती है इसका व्यक्त चित्रण दिखाया है। इस तरह बॉलीवुड में मीडिया और उसकी समस्याओं पर कई फिल्में प्रदर्शित हुई हैं।

3.7 मीडिया और भाषा

देश, काल और वातावरण के अनुसार भाषा परिवर्तित होती है। भारत में परंपरा से संगीत, नृत्य, नाटिका, लोकरंगमंच, गीत, लोकनृत्य एवं लोककला के प्रस्तुतीकरण से लेकर आधुनिक जनसंचार माध्यमों तक आते-आते जिस प्रकार मीडिया में बदलाव आया, उसी प्रकार उसकी भाषा में भी परिवर्तन आया।

धीरे-धीरे मीडिया अपनी भाषा खुद चुनने लगी। हिंदी के अख़बार बीते वक़्त में संस्कृतनिष्ठ शब्दों से पुष्ठ थे, लेकिन हाल के समय में अख़बार इस बहस में उलझे हुए कि हिंग्लिश को स्वीकार किया जाए या नहीं और मौजूदा अंग्रेज़ी शब्दों को देवनागरी लिपि में लिखकर चलाया जाए कि नहीं। दूसरी ओर श्रव्य माध्यम रेडियो ने भी अपनी भाषा सामान्य जनता के अनुरूप किया। यही टी.वी. के दुनिया में भी हुआ, वह भी अपनी भाषा गठ ली।

जब अखबार, रेडियो, टेलिविजन आदि जनसंचार माध्यमों द्वारा बाज़ार ने 'हिंग्लिश' भाषा पाठकों तक पहुँचाना शुरू किया, तब से भाषा की मौलिकता नष्ट होने लगी। साहित्य भी इसके चंकुल में आज फस गया है। फिर भी साहित्यकार अपने साहित्य व पात्रों के ज़रिए भाषा को पुनर्जीवित करने की कोशिश अवश्य कर रहा है।

3.8 निष्कर्ष

आधुनिक काल तक आते-आते साहित्य व मीडिया मनुष्य जीवन से पूरी तरह जुड़ गया है। साहित्य-सृष्टि को पाठक वर्ग तक पहुँचाने का पहला जिम्मा पत्र-पत्रिकाओं ने उठाया। कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, एकांकी तथा नाटक तक सभी साहित्यिक कृति सबसे पहले पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से पाठक वर्ग तक पहुँची है। बाद में आकाशवाणी, टेलिविज़न आदि के आने से साहित्य संप्रेषण और अधिक बढ़ा। इस तरह दिन-ब-दिन साहित्य और मीडिया का संबंध और अधिक गहरा होता जा रहा है।

अध्याय : चार

अस्स्योत्तर कहानियों में अभिव्यक्त मीडिया की समस्याएँ

4.1. अवधारणा

एक दशक पहले किसी ने कल्पना भी नहीं की थी कि भारत में मीडिया का इतना व्यापक और बहुआयामी प्रचार-प्रसार हो जाएगा। एक साथ एक नहीं, दो नहीं, दस नहीं, दर्ज़नों न्यूज़ चैनल चौबीसों घंटे ख़बरों के साथ सामने आ गये हैं। इसके साथ पत्र-पत्रिकाओं की प्रसार संख्या भी बढ़ गयी। सन् 1991 में अपनाई गई नई आर्थिक नीति से शुरू हुई भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप मीडिया बदलने लगी।

टीवी न्यूज़ के आगमन से पूर्व पत्रकारिता को मिशन की तरह माना जाता था। अब यह मिशन से प्रोफेशन बन गया। टीवी न्यूज़ के प्रारंभिक दौर में टीवी पत्रकारिता अख़बारों से खुराक हासिल करके चलता था। लेकिन आज स्थिति बदल गयी है। टीवी जिन खबरों को प्रमुखता देते हैं, उसी को महत्त्व के साथ छापता है। ज़्यादा से ज़्यादा ख़बर आज टीवी पर ही ब्रेक होती हैं। खोजपरक ख़बरें हो या फिर स्टिंग ऑपरेशन, न्यूज़ चैनल आगे रहते हैं। आगे आने की यही होड़ मीडिया जगत में समस्याएँ पैदा करने लगी।

समाचार संकलन से लेकर समाचार बनाने और प्रसारित करने तक सभी स्तरों पर आठ घंटे की समय सीमा से बात नहीं बनती। यह स्थिति न्यूज़ चैनलों के आगमन के पहले से है। सैकड़ों न्यूज़ चैनलों के आने के बाद दबाव और भी बढ़ गया। बढ़ती प्रतिस्पर्धा भी इसके लिए ज़िम्मेदार है। यह प्रतिस्पर्धा प्रतिद्वंदी चैनलों से ही नहीं बल्कि साथ काम करने वालों से भी होने लगे। नौकरी पर जैसे हर समय तलवार लटकती रहती है। हर पल नई ख़बरों की तलाश। ज़ाहिर है कि पत्रकारों के आपस की होड़,

मीडिया में स्वस्थ माहौल नहीं पैदा कर रहा है। यह व्यक्ति के स्वास्थ्य पर भी असर करता है। यही वजह है कि ज़्यादातर पत्रकार बहुत कम उम्र में ही ब्लड प्रेशर और डायबिटिज़ जैसी बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। इस समय देश में ढाई सौ से ऊपर चैनल व अखबार है। इन चैनलों व अखबारों में सीधे तौर पर करीब एक लाख लोग काम कर रहे हैं। परोक्ष रूप से जुड़े लोगों की संख्या इससे कहीं ज़्यादा है। ज़ाहिर है कि लोगों की संख्या के बढ़ने से काम करने वालों के लिए अवसर तो खुलेंगे साथ ही उनकी समस्याएँ भी बढ़ेगी। मीडिया जगत की इन समस्याओं की आगे चर्चा की है।

4.2. मीडिया जगत की समस्याएँ

आज के संदर्भ में ख़बरों में आ रही विकृतियों की चर्चा जब भी की जाती है तो बाज़ार का दबाव इसके लिए सबसे बड़ा दोषी मानता है। बाज़ार ने ख़बरों से न केवल समाचार का तत्त्व छीना बल्कि उनकी सामाजिक उपयोगिता को अव्यवस्थित बना दिया है। पत्रकारों को ख़बरें तय करने से लेकर उन्हें शूट करने, लिखने और संपादन करके दिखाने तक का कार्य बाज़ार को ध्यान में रख कर करना पड़ता है। फलतः महत्त्वपूर्ण ख़बरें हाशिए पर होती हैं और हलकी-फुलकी मसालेदार ख़बरें दिन भर चैनलों पर चलती रहती हैं।

दर्शक चैनल की तरफ आकर्षित होने के लिए ख़बरें तोड़-मरोड़कर ही दिखाया जाता है और सनसनीख़ेज ख़बरों को नाटकीयता के साथ पेश की जाती है। वही दृश्यों को दिखाया जाता है, जो दर्शक बार-बार देखने को लालायित है। बाज़ार के प्रभाव ने ही मीडिया कर्मी को ऐसे करने में मज़बूर किया है।

हमें ख़बरें देते समय शीशे के केबिनों के पीछे कितना असंतोष, कितना क्षोभ, दमन-फ्रस्ट्रेशन चलता रहता है इसका अंदाजा नहीं लगा सकता। यही नहीं, भूमण्डलीकरण और उदारीकरण की जो हवा चल रही है, उससे बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ मुनाफ़ा कमाने के लिए मीडिया के कारोबार में आ रही है। वास्तव में मीडिया कभी भी धन कमाने का कारोबार नहीं है। लेकिन इन्हीं कॉर्पोरेट के प्रभाव ने मीडिया को बदलने में विवश कर दिया। मीडिया में आये परिवर्तन मीडिया कर्मियों पर भी धीरे-धीरे हावी होने लगा है और मीडिया जगत की समस्याएँ वहीं से शुरू होती है। मीडिया जगत की समस्याएँ हैं

4.2.1. मीडिया कर्मी और प्रेशर

नाम और शोहरत पाना हर किसी का ख्वाहिश होती है। मीडिया उसकेलिए एक बहुत बड़ी ज़रिया है। इसमें नौकरी पाने केलिए बहुत पापड़ बेलना पड़ता है। लेकिन मीडिया में आने के बाद उनपर होने वाली प्रेशर वाकई तनाव ग्रस्त ज़िन्दगी जीने पर उन्हें मज़बूर कर देती है। इसमें से टीआरपी की प्रेशर और नौकरी पर टिके रहने की मीडिया कर्मी की प्रेशर आदि देख सकते हैं।

4.2.1.1. टीआरपी की प्रेशर

पिछले डेढ़-दो दशकों से टेलीविज़न की दुनिया में सुनता आ रहा शब्द है रेटिंग या टीआरपी (टेलीविज़न रेटिंग पॉइंट)। भारतीय संचार नियामक प्राधिकरण अर्थात् ट्राई (टेलिकॉम रेगुलेटरी अथॉरिटी ऑफ इंडिया) ने सन् 2008 में रेटिंग प्रणालिओं के कामकाज को सुधारने के लिए तैयार की गई अपनी रिपोर्ट में टीआरपी की ज़रूरत को

रेखांकित किया। रेटिंग प्रणाली का इतिहास देखे तो, अमेरिका में अख़बारों की प्रसार संख्या तय करने का सिलसिला उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में ही प्रारंभ हो चुका था। मगर जब रेडियो आया तो उसकी दर्शक संख्या नियमित रूप से जानने की ज़रूरत महसूस की गयी। सन् 1930 के दशक में पहली बार टेलीफ़ोन के ज़रिए ली गयी जानकारी के आधार पर रेडियो की रेटिंग बताने का सिलसिला शुरू हुआ। पचास के दशक में नीलसन ने टीवी सेट्स में रिकार्ड करने वाली चिप लगाकर टीवी की नियमित रेटिंग शुरू की। इस तरह पत्र-पत्रिकाएँ और रेडियो-टीवी सबके सब बाज़ार व्यवस्था की जरूरतों को पूरा करने के लिए रेटिंग व्यवस्था का आविष्कार और विस्तार किया।

भारत में स्थितियाँ इसके ठीक विपरीत थीं। यहाँ रेटिंग प्रणाली भी देर से शुरू हुई थी। भारत में जब टेलिविज़न की शुरुआत हुई तो किसी ने सोचा नहीं था कि टीवी समाचार या कार्यक्रम, बाज़ार के रंग में ढल जायेंगे और उनकी लोकप्रियता को मापने के लिए कोई प्रणाली निर्धारित की जायेगी। लेकिन आज विडंबना की स्थिति यह है कि जो टीवी न्यूज़ चैनल ख़बरों में मिर्च मसाला लगाकर या ख़बर के अलावा कुछ भी कवरेज दिखा रहे हैं, वही न्यूज़ आज टीआरपी की मशाल थामे हुए हैं। ऐसे में ख़बरों के नाम पर कुछ भी दिखाकर नंबर एक, दो या तीन पर रहने वाले चैनलों में काम करने वाला पत्रकार अगर अपने चैनल की पालिसी से सहमत नहीं हुआ तो जाहिर है कि उसे नौकरी छोड़नी पड़ेगी। चैनल अपने टारगेट पाने केलिए कर्मचारियों को रेटिंग वाली ख़बर लाने केलिए प्रेशर करते हैं।

अजीत अंजुम की कहानी 'फाइडे' में इसका व्यक्त चित्रण मिलता है। जैसे, ''.... शटअप यार, जब मैं तुम्हें समझाने की कोशिश करता हुँ तो तुम मुझे ख़बर समझाने लगते हो.... हमें टीआरपी चाहिए, समझे....और टीआरपी बिजली-पानी से नहीं मिलने वाली है....''[25] यानी कि, मामूली ख़बर नहीं टीआरपी रेटिंग वाली ख़बर को लाने केलिए रिपोर्टर को बाध्य करता है। अगर जब चैनल की दशा खराब हो जाती है, तब भी मीडिया कर्मी पर ही प्रेशर आता है। चैनल केलिए कोई भी ख़बर जायस है बस, वह टीआरपी में आगे आना है।

आज-कल की न्यूज़ ट्रेंड भी अजीब सी हो गयी है। विजय विद्रोही की कहानी 'प्रेत-पत्रकारिता' में इसका उदाहरण है। आज स्थिति यह है कि मीडिया पर ड्रामे की तरह ख़बरें दिखाई जा रही हैं, चाहे वह यमराज से की भेंट हो या मृत्यु का तमाशा - ये सभी कार्यक्रम टीआरपी के लिए नाटकीय तरीके से दिखाए जाते हैं, जैसे प्रस्तुत कहानी में ''स्ट्रिंगरों को फ़रमान जारी हो गया, भूत - डायन - चुडैल - जिन्न ढूंढने का।''[26] मजेदार बात यह है कि ये ड्रामावाले कार्यक्रम टीआरपी की दौड़ में आगे चल रहे हैं। वास्तव में मीडियाकर्मी बहुत उम्मीद से मीडिया में आता है और अंत में ऐसा ऑपरेशन कवर करने केलिए बाद्य हो जाता है जिसमें हर लाईन एक ब्रेकिंग न्यूज़ की तरह होती है। टीआरपी कम हो गये तो मीडियावालों के मन में डर सा बैठ जाता है कि आगे नौकरी में क्या होगा? यही डर पूरे नौकरी में मीडियावालों को झेलनी होती है।

---

[25] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.36

[26] वही, पृ.56

कभी-कभी रिपोर्टर को शान्त रहे शहर से धमाका ढूंढने का फर्मान मिलता है। प्रोड्यूसर की प्रेशर में आकर रिपोर्टर को कुछ-न-कुछ धमाका समाज से ढूंढना होता है। 'दिव्या, मेरी जान' कहानी में रिपोर्टर वागीश कहता है कि, ''वैसे भी रिपोर्टर हूँ, क्रियेटर नहीं। सब अमन चैन है तो मैं कहां से धमाका कर दूं....''[27] मीडिया को रेटिंग वाली धमाकेदार न्यूज़ ही चाहिए। टीआरपी या हफ्ते भर की रेटिंग में चैनल पहले नहीं आये तो नौकरी गयी।

रिपोर्टिंग के दबाव के बारे में पंकज श्रीवास्तव अपनी कहानी 'दिव्या, मेरी जान' में व्यक्त किया है। कहानी के पात्र वागीश, अमित से कहता है, ''तुम घास छील रहे हो वहां? चैनल जेड सिंधिया के भूत पर एक्सक्लूसिव पेल रहा है जबकि ख़बर हफ़्ते भर से हमारे पास थी।''[28] अतः न्यूज़ कैसे भी हो मीडिया को उससे कोई फरक नहीं पड़ता बस उसे टीआरपी वाली न्यूज़ या स्टोरी चाहिए। अगर टीआरपी वाली कोई स्टोरी दूसरे चैनल दिखाये तो रिपोर्टर की खैर नहीं। अजीत अंजुम की 'फ्राइडे' कहानी में हर शुक्रवार को मीडिया हाउस में टीआरपी मीटिंग होती है। जिस हफ़्ते टीआरपी ठीक होती है, उस हफ़्ते तो मीटिंग चाय-पकौड़े के साथ खुशनुमा माहौल में ख़त्म होती है। जिस हफ़्ते टीआरपी तीन-चार प्वाइंट गिर जाती है, उस हफ़्ते बॉस आकर सबका बैंड बजाता है। बॉस के यह ताना सुन-सुनकर रिपोर्टर तंग आते हैं। टीआरपी के इस प्रेशर में मीडिया कर्मी अनजाने ही कह डालता है कि, ''....कितना अच्छा होता अगर ज़िंदगी में

---

[27] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.205

[28] वही, पृ. 208

कभी शुक्रवार नहीं होता।''[29] अर्थात् टीआरपी की प्रेशर इतना ज्यादा मीडिया कर्मी पर हावी हो गया है कि वे ख़बर की नहीं, टीआरपी वाली ख़बरों के पीछे है। इस प्रकार टीआरपी का प्रेशर हमेशा मीडिया कर्मी पर रहता है।

4.2.1.2. नौकरी पर टिकने की प्रेशर

मीडिया में नौकरी सबका ख्वाब होता है। लेकिन मीडिया के उसूलों में रहकर ही नौकरी करनी होगी। अगर उनके उसूलों पर नौकरी नहीं की तो मीडिया जगत को ही भूलना पड़ेगा। चैनल में या मीडिया जगत में बने रहने के लिए कई लोगों के गुड बुक में रहना भी अवश्यक है। तभी कैरियर बनेगा। उसके लिए कई रास्ता है। 'ट्रैकशॉट' कहानी में संपादक प्रकाश समरसिया के गुड बुक में आने रिपोर्टर सौरभ जैसे सभी उन्हें गुटका खिलाता है। कहता है, ''गुटका खिलाओ, स्टोरी पाओ या स्टोरी से बच जाओ।''[30] हर दिन नई स्टोरी मिले तो चैनल खुश और रिपोर्टर भी। लेकिन हर दिन नई स्टोरी मिलना मुमकिन नहीं। इसलिए मीडिया कर्मी को उन लोगों की चमचागिरी करनी होती है जो उसके नौकरी बनाये रखे। यहां संपादक को गुटका खिलाने से वह कोई न कोई स्टोरी हाथ लगवाते हैं जिससे स्टोरी ढूंढने की चौकीदारी से बच भी जाती है और नौकरी सुरक्षित रहती है।

न्यूज़ अगर समय पर न पहुंची तो नौकरी जाने की व बॉस के मुंह से सुनने की डर हमेशा मीडियाकर्मी को सताती रहती हैं। 'ट्रैकशॉट' कहानी में रिपोर्टर इसके बारे में कहता है कि ''..... पैक अप। चलो, जल्दी चलो, 10 बजे के बुलेटिन में चलनी है।

---

[29] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.39

[30] वही, पृ.281

किसी और चैनल ने शाट्स पहले दिखा दिया तो प्रकाश समरसिया मेरी ले लेगा।''[31] इस तरह एक ओर चैनल पर न्यूज़ पहले दिखाने की प्रेशर है तो दूसरी ओर समय पर न दिखाने पर नौकरी से हाथ धो बैठने की डर को संजय नंदन ने अपनी कहानी द्वारा दिखाने का प्रयास किया है।

ब्यूरो चीफ हमेशा मीडिया कर्मी के पीछे है। एक छूक नौकरी से फयर। इसलिए रिपोर्टर अपनी ओर से हमेशा सतर्क रहता है। फिर भी चीफ का प्रशर डरावने सपने की तरह मीडियाकर्मी पर रहता है। इसलिए नौकरी में बने रहने के लिए हर दिन नए-नए स्टोरी की तलाश में रहता पत्रकार। पंकज श्रीवास्तव की कहानी 'दिव्या, मेरी जान' में प्रमोद कहता है - ''चलता हूं, कल की रोटी का इंतज़ाम करना है।''[32] रोटी से प्रमोद की मुराद स्टोरी से था। यानी कि न्यूज़ है तो नौकरी है। न्यूज़ नहीं तो नौकरी नहीं, रोटी नहीं। ऐसी हालत हो गयी है पत्रकार की। इस प्रकार नौकरी में टिकने के लिए स्टोरी ढूंढने की प्रेशर मीडिया कर्मी पर देखा जा सकता है।

4.2.2. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अपनी पहचान की तलाश

रामधारी सिंह 'दिनकर' की कविता 'कलम या कि तलवार' की पंक्ति में वे पूछते हैं - 'दो में से क्या तुम्हें चाहिए कलम या कि तलवार'[33]। अर्थात् स्वतंत्र और निर्भीक पत्रकारिता के लिए दोनों ही चाहिए, लेकिन पत्रकार के पास सिर्फ कलम है, तलवार नहीं। फिर भी वह उस कलम को तलवार की तरह चला सकता है। लेकिन वह

---

[31] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.280

[32] वही, पृ.210

[33] https://sjran.org/wp-content/uploads/2021/05/Chapter-7-2.pdf

नौकरी के कारण कभी-कभी मजबूर है। प्रेस का प्रमुख कार्य वस्तुपरक सूचना प्रदान करना है लेकिन इन पर भी यह जिम्मेदारी है कि जब भी वह कोई समाचार सार्वजनिक करें उसके पहले उसकी सत्यता एवं विश्वसनीयता की पुष्टि कर लें। आज कल देखा जा रहा है कि कई बार इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और प्रिंट मीडिया तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करते हैं। यहां पत्रकार की अभिव्यक्ति का कोई मोल नहीं रहता। जो मालिक चाहता है, वही मीडिया कर्मी को करना पड़ता है। बोलने से मानव की और साहित्य से साहित्यकार की अभिव्यक्ति होती है, पर जो आँखों देखी ख़बर की अभिव्यक्ति न कर पाये तो? वह चिंता का विषय है। मीडिया में आज कल यही हो रहा है। अगर मीडिया में आ गये तो, चाहे-अनचाहे सब कुछ करना होता है, सिवाय अपनी अभिव्यक्ति को छोड़कर। मीडियाकर्मी को अपनी सारी प्रतिभा को चैनल केलिए समर्पित करना होता है। तभी जाकर नौकरी में टिक सकता है।

रवि पाराशर की कहानी 'अनुभव की अभिलाषा' में कहता है कि ''प्रोड्यूसर जो तय करते हैं, वही चलता है! तुम ले आओ एक्सक्लूसिव रिपोर्ट, चलेगी तो हमारी मर्ज़ी से ही!..!..!''[34] यानी पत्रकार को अपनी इच्छानुसार न्यूज़ दिखाने की स्वतंत्रता नहीं है। जो भी न्यूज़ है मीडिया चीफ़ की पसंद से ही चलता है। इस तरह हर सुबह मीडिया कर्मी केलिए इम्तहान की घड़ियां होती है। अपनी अभिव्यक्ति न करने पर दुःख तो होता है लेकिन वह सोचता है कि आज नहीं तो कल उसकी आवाज़ जनता तक पहुंचेगा। 'यू टर्न' कहानी के नायक 'सागर' का लेख भले ही नहीं छपा, मगर इससे

---

[34] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.233

उसके उत्साह में कमी नहीं आई, क्योंकि वह जानता था आज नहीं तो कल मेरी बात छपेगी, लोग उस पर सोचेंगे। लेकिन न्यूज़ चैनल में आते "खबरों का पल पल पीछा, फीड के लिए भागादौड़ी, ओबी प्लेसमेंट का जोड़-घटाव, आउटपुट और रिपोर्ट्स के लगातार आते कॉल्स और सीनियर्स के कभी न ख़त्म होने वाले सवाल .. इसमें देर क्यों हुई? रिपोर्टर को क्यों नहीं बताया? हमीं को क्यों नहीं मिलता? यह ख़बर कैसे छूट गई.. सागर याद करते ही कांप उठता है।"[35] जो चैनल कहता है वही ख़बर लाना है और अपनी अभिव्यक्ति की वहां कभी कोई मोल नहीं रहता।

4.2.3. पारिवारिक संकट

काम और अपने परिवार के बीच फँसे रिपोर्टर नौकरी के प्रेशर में आकर दिन-रात एक करके चैनल के लिए काम करता रहता है। बदलते वक्त ने मीडियावालों से उनकी संवेदना, सहानुभूति सब छीन गये। जिसकी कीमत परिवारवालों को चुकाना पड़ता है।

'अनुभव की अभिलाषा' कहानी में नायक अनुभव और नायिका अभिलाषा दोनों मीडिया में काम करने वाले हैं। उनकी प्रेम कहानी शादी तक आ पहुँची और दोनों हनीमून केलिए खुशी-खुशी निकले। जब वे वहाँ पहुँचे तो अभिलाषा का मोबइल घनघना उठा। डेस्क इंचार्ज का फोन था। जहां वे आए हैं, वहां से कुछ किलोमीटर दूर मौसम की पहली बर्फ़बारी हुई है। डेस्क इंचार्ज ने कहा - "अगर अभिलाषा फ़ोनो दे दे, तो ले

---

[35] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.194

लो.... एक फोनो हो जाता तो मज़ा आ जाता....''[36] अनुभव को लगता है कि उसकी अभिलाषा नौकरी की व्यस्थता में कहीं खो गयी है। जिंदगी के स्वकार्य पलों में नौकरी की इस तरह की दखलअंदाजी पारिवारिक संबंध में दरार पैदा कर सकती है।

मीडिया में नौकरी पाना सब चाहते हैं। 'दिव्या, मेरी जान' कहानी में नायक अमित को जब चैनल एक्स से नियुक्ति की चिट्ठी मिली थी तो लगा था सारा जहां क़दमों में आ गिरा है। लेकिन धीरे-धीरे नौकरी की व्यस्थता और तनाव ने पति पत्नि के बीच तनाव पैदा करना शुरू किया। दिव्य कहती है कि, ''क्या हो जाता है तुम्हें.... दफ़्तर को हर वक्त ढोने का क्या मतलब?.... आधी रात को भी चैन नहीं है''[37] पहले अख़बार में नौकरी थी तो सब खुशी-खुशी जाता था। लेकिन जब से चैनल में काम करना शुरू किया तो चैन की नींद वह सोया नहीं है। दिन-रात दफ्तर में हो या घर में वह चिड़-चिड़ा रहता है, जो दिव्या को दुःखी करता है। नौकरी की व्यस्तता ने रिपोर्टर से उनके परिवार की खुशी तक छीन लेता है। 'दिव्या मेरी जान' कहानी में अमित की पत्नी दिव्या कहती है कि, ''सबकुछ अपना होते हुए भी पराया लगता है। पहले स्कूटर पर घूमते थे, किराए के घर में रहते थे, पर कितने खुश थे। अब तो बस तनाव ही तनाव। लगता है ज़िन्दगी को आसान बनाने वाले सामान, खुशियां गिरवी रखकर मिली हैं। कितने दिन हुए तुम्हारा ठहाका सुने हुए।''[38] पति की व्यस्थता पर समय न मिलनेवाली पत्नी का दर्द यहां देखा जा सकता है।

---

[36] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.238

[37] वही, पृ.204

[38] वही, पृ.213

नौकरी के सामने लाचार पत्रकार को, रोजगार से बेदखल होने की डर हमेशा रहती है। 'वधस्थल से छलाँग' कहानी में सम्पादक रिपोर्टर को धमकाता है कि, ''अखबार बन्द होने पर तुम लोग अपनी बीवियों के साथ दूसरों के घर घूमते फिरोगे।''[39] बेरोज़गार होने से घर-परिवार की हालत क्या होगी? यही सोच रिपोर्टर को सताती रहती है।

तनाव ग्रस्त रिपोर्टर पर नौकरी छोड़ने की प्रेशर भी हमेशा रहती है। 'यू टर्न' कहनी में 'सागर' की इसी हाल को लेखक नीरेन्द्र नागर ने चित्रित किया है। सागर ने जब नौकरी छोड़ने की बात छेड़ी तो सागर का दर्द जाकर ही उसकी पत्नी सुमि ने सवाल किया कि, ''तुम करोगे क्या? क्या तुम्हें तुरंत कोई दूसरी नौकरी मिलेगी? नहीं मिली तो घर का खर्च कैसे चलेगा? म्युचुअल फंड में हर महीने जानेवाले इंस्टॉलमेंट का क्या होगा? सुमि आगे बोली, मैं नहीं कहती कि तुम इस्तीफ़ा मत दो। लेकिन अभी नहीं। पहले कहीं नौकरी तलाश लो, फिर छोड़ देना।''[40] आखिर वह समझ गया कि जल्दबाज़ी में लेने वाले फैसले कभी-कभी तो ज़िन्दगी व परिवार पर भारी पड़ सकता है। इसलिए न चाहते हुए भी परिवार के खातिर नौकरी पर मीडिया कर्मी को बना रहना पड़ता है।

4.2.4. मीडिया कर्मी का आदर्श व यथार्थ

मीडिया में आते वक्त बहुत से आदर्श लेकर ही पत्रकार आते हैं। लेकिन यथार्थ कुछ और होता है। अगर वे एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में जाए तो, उन्हें प्रेस कॉन्फ्रेंस में चाहे कितनी बढ़िया स्कॉच पिलाई जाए, महँगे उपहार दिए जाएँ; पर वहां के सारी ख़बरें छपने

---

[39] कथादेश - अगस्त, 2009, पृ.221

[40] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.197

की गारंटी नहीं है। अर्थात् आदर्श को कभी-कभी अनदेखा करना पड़ता है। अख़बार केलिए न्यूज़ तो, तीन कॉलम और टीवी केलिए ख़बर एक फ़ोनो से ज्यादा अहमियत वाली नहीं है। इन्हें ख़बर से मतलब होता है और वह भी तब तक जब तक पहली ख़बर को पीटने कोई दूसरी ख़बर न आ जाए। मीडिया में नौकरी करते वक्त पत्रकार को एक यंत्रमनुष्य सा रहना होता है। वहां आदर्श या फिलॉस्फी का कोई माईना नहीं रहा। 'दिव्या, मेरी जान' कहानी में अमित प्रमोद को समझाते हुए कहता है - ''फिलॉस्फर मत बनो, ऐसे सोचेगे तो एक भी ख़बर नहीं कर पाओगे। तुम्हारा पैमाना मान लिया जाए तो न्यूज़ चैनल बंद हो जाएं और हम सड़क पर।''[41] यानि आदर्श लेकर चलने से कोई फायदा नहीं। पेट के लिए सब भूलना होता है।

रिपोर्टिंग में अपने आदर्श को लेकर आनेवाले पत्रकार बॉस लोगों के आगे कभी-कभी आपने आदर्शों को भूलने में विवश हो जाता है। 'दिव्या, मेरी जान' कहानी में ट्रेनिंग के दौरान यही सुनने को मिलता है कि, ''रिपोर्टर को ख़बर 'बेचनी' आनी चाहिए तो चकरा गया था। ख़बर भी खरीदने-बेचने की चीज़ है, पहली बार सुन रहा था। थोड़ा इमोशन हो.. ड्रामा.. तो मजा आ जाए।''[42] इस तरह आज मीडिया का यथार्थ बदल रहा है। जो सीखी-सिखायी नैतिकता पत्रकार को नौकरी के खातिर छोड़नी पड़ती है।

'दिव्या, मेरी जान' में अमित को चैनल में नौकरी मिलने पर उसकी ख़्वाब पूरे होने की खुशी थी। तभी उसकी पत्नी दिव्या कहती है - ''ख्वाब पूरे करते-करते नींद से

---

[41] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.209

[42] वही, पृ.211

हाथ धो बैठे हो, ये भी कभी सोचा है।''[43] यानी चैनल अपने मुनाफे केलिए उनके आदर्शों के हिसाब से कर्मियों से काम निकालता है। अमित तो अपने आदर्शों के आदी है इसलिए दिव्या ने उसे पहले ही चेतवनी दी। मीडिया में बने रहने केलिए सीखे हुए सबकुछ भूलना होता है। तभी पत्रकार मीडिया में टिक सकता है।

'यू टर्न' कहानी के नायक सागर अंदर ही अंदर सोचता है कि नौकरी बनाये रखने केलिए उसने क्या कुछ त्याग दिया। ''किशोरावस्था में प्रेमचंद, यशपाल और गोर्की की किताबें पढ़कर स्थापित हुईं मान्यताओं को भुलाना होगा, भूलना होगा कॉलेज के दिनों में लाल परचम के बीच सीखा और सिखाया सबक, अख़बार के दिनों में आम आदमी का पक्ष लेते हुए जो लेख लिखे, और पुरातनपंथ और अंधविश्वास के ख़िलाफ जो मोर्चा संभाला, उसे भुलाना होगा। भूलना होगा उस बॉस को जिसने कभी भाई बनकर तो कभी दोस्त बनकर पत्रकारिता सिखलाई और सिखाया कि आदर्श और भावुकता के साथ किस तरह पत्रकारिता की जा सकती है, बताया कि किस तरह अपने स्वाभीमान के लिए बड़ी-से-बड़ी नौकरी को लात मारी जा सकती है, सिखाया कि किस तरह किसी ख़बर के साथ फफक-फफककर रोया जा सकता है।''[44] वह टीवी चैनल में आया था उसी की राह पर चलने के लिए, लेकिन दुनिया काफ़ी बदल गई थी। ख़ासकर न्यूज़ चैनलों की दुनिया में। वहां उसे अपने आदर्श एक जगह रखनी थी, क्योंकि यथार्थ कुछ और ही था। धीरे-धीरे उसे लगने लगा कि वह अंदर से और बाहर से मर रहा है।

---

[43] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.213

[44] वही, पृ.198

इस प्रकार मीडिया में आपने आदर्शों को लेकर सब आते हैं। बाद में मज़बूरन उसे मीडिया के यथार्थ से समझौता करना पड़ता है।

'उसका लौटना' कहानी में मालती मीडिया में इतनी सक्रिय रहती थी कि वह पत्रकारिता का पूरा आनंद ले रही थी। जितना मज़ा अख़बारों में काम करते लिया, उतना ही टीवी पत्रकारिता में भी उसने लिया। लेकिन समय के साथ सब कुछ बदल गया। अब उसे ''काम से आनंद का झरना नहीं फूटता। चैनल ख़बरों के नाम पर कुछ भी परोस रहे हैं। दर्शक ठगे जा रहे हैं।''[45] अर्थात् कोई भी पत्रकार अपने आदर्शों और उसूलों को मीडिया में ज्यादा देर तक लेकर नहीं चल सकता। नौकरी के पहले कुछ दिन अपने आदर्शों के हिसाब से जाऐंगे, फिर चैनल मालिक के हिसाब से। अगर नौकरी चाहिए तो मालिक के अनुसार न्यूज़ दिखाने होंगे, नहीं तो बाहर की हवा खानी होगी। मुकेश कुमार की कहानी 'टारगेट' में राजेश कहता है - ''पत्रकारिता में नौकरी करने केलिए आए हो या पत्रकारिता करने..? राजेश बोलता गया.. देखिए सर हम तो पत्रकारिता में इसलिए आए कि इसमें सेटिंग-फिटिंग का पूरा जुगाड़ है..''[46] अतः पत्रकारिता का जो आदर्श है उससे ठीक उल्टा है यथार्थ। आज जुनून के साथ पत्रकारिता में आनेवाले बहुत कम है। सब नाम, शोहरत व मुनाफे की चाह में आते हैं। इस तरह पत्रकारिता आज पूरी तरह प्रोफेशन बन गया है। जो कॉलेजों में सिखाते हैं वह बस पुस्तकों तक सीमित हो जाते हैं। अधिकांश कर्मी आदेशों के अनुसार ही नौकरी करते हैं न कि आदर्शों के अनुसार।

---

[45] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.139

[46] वही, पृ.81

4.2.5. टीआरपी के दुष्चक्र में फँसा मीडियाकर्मी

टीआरपी शब्द का आज बड़े पैमाने पर इस्तेमाल होता है। दरअसल, टीआरपी बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था से उपजी एक अवधारणा है और उसका मुख्य उद्देश्य लाभ कमाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है। बाज़ार और उसे चलाने वाली शक्तियाँ ख़बरों और टीवी कार्यक्रमों को एक उपभोग सामग्री के रूप में परिवर्तित कर रहे हैं। इसके फलस्वरूप मीडिया मसालेदार और मनोरंजक ख़बरों को बिना उसके महत्त्व को देखे परोसने में लगी है। टीआरपी एक ऐसा मंत्र था, जिसका जाप सबसे ज्यादा जो करे उसी की नौकरी सबसे सुरक्षित। पंकज मित्र की कहानी 'आज, कल, परसों तक' में रिपोर्टर कहते हैं ''आखिर कितनी देर तक ख़बर पे खेल सकते हैं हम भी। क्राइम का टीआरपी मालूम है न .....''[47] टीआरपी केलिए कोई भी न्यूज़ दिखाने में मीडिया हिचकती नहीं है। चाहे लोगों की रुचि क्राइम में हो या क्रिकेट में, घंटों भर उसे चैनल पर खेलने में मीडिया को कोई एतराज़ नहीं। बस उन्हें उस स्टोरी की रेटिंग से मतलब है। विभांशु दिव्याल की कहानी 'तीसरा कंडोम' में संपादक कहता है ''न्यूज इज नथिंग बट ए प्रोडक्ट। बाज़ार में केवल वही प्रोडक्ट टिकता है जिसे बेचा जा सके, जिसे बेचकर पैसा बनाया जा सके। जिस प्रोग्राम की टीआरपी नहीं हो वह क्या खाक बिकेगा''[48] न्यूज़ केवल बिकने की चीज़ बनती जा रही है। उसकी रेटिंग के हिसाब से ही उसकी बिक्री तय होती है। चाहे न्यूज़ कितने भी महत्त्वपूर्ण हो, टीआरपी के अनुसार ही उसका प्रसारण होगा। आज कल खबरों के बारे में पत्रकार यही सोचने को मजबूर है कि ''इतना ठंडा

---

[47] कथादेश - अगस्त, 2009, पृ.224

[48] वही, पृ.213

बुलेटिन नहीं चल सकता''[49] अर्थात् मीडिया कर्मी भी अपने दिमाग में यही ठान रखा है कि रेटिंग वाली न्यूज़ ही लोग डिमेंट करते हैं। अगर कोई ब्रेकिंग या रेटिंग वाला न्यूज़ मिलता है तो बाकी न्यूज़ को कुछ समय केलिए रोक दिया जाता है और घंटे भर या हफ्ते भर उसी की ही चर्चा चलती रहती है या अगली ब्रेकिंग या रेटिंग वाली न्यूज़ मिलने तक यह सिलसिला चलता रहता है। संजीव पालीवाल की कहानी 'बम-विस्फोट' में ब्रेकिंग न्यूज़ मिलने पर ''चौधरी साहब सब रोक दो सिर्फ़ इसी ख़बर पर रहना है, खेल जाओ, काफ़ी दिनों के बाद मौका आया है।''[50] चैनल वही परोसता है जो एक अरब से ज़्यादा हिंदुस्तानियों की पसंद तय कर देते हैं वह भी टीआरपी के ज़रिए। 'तीसरा कंडोम' कहानी में दूसरे न्यूज़ चैनल पर ब्रेकिंग न्यूज़ चलने पर खुद का चैनल उसे न चलाने पर संपादक बौखला जाता है और अपने मोबाइल पर चीखने चिल्लाने लगते हैं ''..... ख़बर क्यों नहीं चली अभी तक.. सालो पिटवा दोगे हमें.. कौन है इनपुट में.. ओवी क्यों नहीं भेजी अभी तक.. पहले ब्रेकिंग चलाओ.. रिपोर्टर पहुंच गया है तो फीड क्यों नहीं आयी..''[51] इस तरह मीडिया ब्रेकिंग न्यूज़ चला कर टीआरपी बढ़ाने की होड़ में है। मीडिया के बीच की प्रतियोगिता जीतने के लिए टीआरपी चाहिए ही। इसके लिए सबके टारगेट पहले से फिक्स किया जाता है। ''....किस ब्यूरो को कितना बिज़नेस देना है.... कौन रिपोर्टर किन-किन सरकारी विभागों को दुहेगा.... सब तय हो रहा है। यहां तक कि स्ट्रिंगरों तक को कह दिया गया है कि अगर बिज़नेस नहीं तो काम भी

---

[49] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.240

[50] वही, पृ.245

[51] कथादेश - अगस्त, 2009, पृ.212

नहीं.... समझ में नहीं आ रहा पत्रकारिता कराना चाहते हैं या दलाली।''[52] टीआरपी की टारगेट पकड़ने की व्यग्रता में मीडिया रिपोर्टरों से बिज़नेस ही करवाती है। इसके लिए रिपोर्टरों को अपनी नीति को एक जगह रखकर मीडिया मालिक के हिसाब से चलना होता है। इस तरह आज मीडिया का मूल्य ही बदल रहा है। टीआरपी लाये तो, पदोन्नति है नहीं तो पदच्युति ही हाथ लगता है। 'टारगेट' कहानी में बॉस कहता है - ''सबको हर महीने का टारगेट दे देते हैं.... जो पूरा करेगा उसको बोनस और कमीशऩ मिलेगा और जो नहीं करेगा उसकी छुट्टी कर दी जाएगी..''[53] इस तरह सारे पत्रकारों को धंधेबाज़ बना रहा है।

4.2.6. मीडिया के बीच की प्रतियोगिता

मीडिया के विस्तार के साथ अनेक चैनलों का प्रारंभ होने लगा, साथ ही उसकी विविधता और बहुलता ने चैनलों के बीच प्रतियोगिता और प्रतिद्वंद्विता बढ़ाने लगी। जिसकी वजह से ख़बरों के प्रसारण का तौर-तरीके बदलने लगे। मीडिया की बढ़ती संख्या ने कुछ अलग, कुछ नया और बेहतर ख़बरें सुनाने और पढने की आस दी थी। लेकिन इन सब के बजाय मीडिया में एक-दूसरे का नकल ही देखने को मिला। जैसे व्यावसायिक रूप से सफल किसी भी कार्यक्रम या आइडिया की दूसरे मीडिया चैनल पर अनुकृति के रूप में आने में देर नहीं लगती है। उदाहरण केलिए क्राइम शो, सिनेमा, क्रिकेट आदि पर आधारित कार्यक्रम अगर रेटिंग बनाये रखे हैं तो सभी चैनलों पर एक ही समय व एक ही तरह से प्रस्तुत किये जाते हैं। आज मीडिया के बीच यही होड़ है कि

---

[52] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.84

[53] वही, पृ.88

प्रतिद्वंद्वी चैनल कवर किये घटना से अधिक रेटिंग वाला ख़बर अपने चैनल द्वारा पहले दिखाना है। इस तरह एक-दूसरे से आगे निकलने की व्यग्रता में वे 'एक्सक्लूसिव' या 'ब्रेकिंग न्यूज़' की तलाश में रहते हैं। और तो और न्यूज़ ढूंढने की प्रेशर अलग सी मीडिया कर्मियों पर रहते हैं।

परवेज़ अहमद की कहानी 'सातवाँ आसमान' में एक न्यूज़ जो दूरदर्शन की लाइव फीड ले रहा था। बाकी चैनल लाइव दिखा रहे थे। तभी चैनल के संपादक गोपीचंद दौड़ते हुए आए और कहने लगा, ''भाई बिंद्र जी बहुत नाराज़ हैं.... बाक़ी चैनल अपना रिपोर्टर दिखा रहे हैं.... लेकिन हम अपना रिपोर्टर क्यों नहीं दिखा रहे?''[54] आज की यही हकीकत है कि कोई 'न्यूज़' किसी चैनल पर चलाता है तो उसे बीट करते हुए दूसरा चैनल न्यूज़ दिखाने की होड़ में है। अगर कोई 'न्यूज़' दूसरे चैनल को मिलकर खुदके चैनल को न मिले तो, मीडिया कर्मी की खेर नहीं। कभी-कभी तो कुछ मीडिया कर्मी अपनी नौकरी के प्रति इतना समर्पित रहता है कि दूसरे चैनल पर दिखा रहे 'न्यूज़' अगर अपने चैनल में न आये तो वे हड़बड़ा जाते हैं। जैसे 'सातवाँ आसमान' कहानी में मिसेज़ जुल्का दूसरे चैनल को देखकर एकदम डेस्क वालों पर चढ़ जाती है कि ''हाय यह ख़बर हमारे पास क्यों नहीं है।'' कई बार उनको समझाया गया, ''कोई बात नहीं, उससे बड़ी ख़बर हमारे चैनल के पास है।'' वह झुंझला जातीं, ''लेकिन वह तो नहीं है न जो उनके पास है।''[55] इस तरह जाने अनजाने मीडिया कर्मचारी भी मीडिया के बीच की प्रतियोगिता का हिस्सा बन जाता है।

---

[54] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.264

[55] वही, पृ.265

'ब्रेकिंग न्यूज़' कहानी में मुंबई में हुई सीरियल ब्लास्ट में मरनेवालों की संख्या एक सौ नब्बे पहुंचने पर आउटपुट इंचार्ज अभय त्रिपाठीजी ने कहा ''अरे यार, बाक़ी सारे चैनल चार-चार विंडो खोलकर बैठे हुए हैं और हम पिछले डेढ़ घंटे से ख़बर ही पेले जा रहे हैं। बाक़ी जगहों से विजुअल हैं.. फ़ीड क्यों नहीं आ रही है? सैक करो सालों को.. 'ख़बरदार' जैसे दो टके के चैनल के पास भी तीन जगहों के विजुअल हैं और हमारे यहां? साले सबको ठीक कर दूंगा। टुच्ची-सी ख़बर के लिए साले मेल पर मेल मारेंगे लेकिन जब कोई बड़ी ख़बर हो तो सारी फुर्ती पिछवाड़े घुसड़ जाती है''[56] इस प्रकार एक दूसरे के आगे आने की होड़ ने मीडिया को अंधा कर दिया है। देखे तो, इस प्रकार मीडिया के संवेदना भी आज धीरे-धीरे नष्ट हो रहा है।

4.2.7. सनसनीखेज

घटना की सही जानकारी देने के बजाय घंटों तक घुमा-फिराकर एक ही चीज़ दिखाकर मीडिया उसे सनसनीखेज बनाता है। इससे मीडिया को करोड़ों के विज्ञापन और विज्ञापन से मुनाफा मिल जाते हैं। इस तरह एक स्टोरी या न्यूज़ को एक्सक्लूसिव बनाने में मीडियावाले कुछ भी करने केलिए तैयार है।

ख़बर की सच्ची जानकारी पाये बिना एक्सक्लूसिव बताकर रिपोर्टिंग केलिए भेजता प्रोड्यूसर, चैनल को नंबर वन बनाने केलिए किसी अख़बार के इंटरनेट एडिशन से ज्ञान हासिल करके ब्यूरो रिपोर्टरों को हांका करता है। 'दिव्या, मेरी जान' कहानी में प्रोड्यूसर प्रफुल्ल अख़बार के इंटरनेट एडिशन से मिले न्यूज़ के आधार पर अमित से

---

[56] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.158

कहता है - ''अमित, तुरंत मैनपुरी चले जाओ। बढ़िया ड्रामा है। ओबी वैन भी ले जाओ''[57] आखिर न्यूज़ सुनते ही अमित हैरान हो जाता है कि मैनपुरी में माधवराव सिंधिया का भूत दिखता है जहां उनका प्लेन क्रैश हुआ था। इस तरह के अंधविश्वास को सनसनीखेज ख़बर बनाकर दिखाना मीडिया का नया तंत्र बन गया है। न्यूज़ जो भी हो बस चैनल नंबर वन बनना है। अमिताभ की कहानी 'होता है शबोरोज़ तमाशा मेरे आगे' में नायक विनय का विरोध अनसुना करते दूसरा फरमान सुनाया, ''आठ साल का एक लड़का अपने सीने पर से बीस हाथी गुजारने का कारनामा करने वाला है। स्टोरी कवर करो। इंट्रेस्टिंग होगी... आधे घंटे खेला जा सकता है।''[58] कहीं-न-कहीं इस तरह के पागलपन को टीवी पर दिखा-दिखाकर मीडिया औरों को उकसा रहा है। सनसनीखेज ख़बरों को इस तरह रेटिंग बढ़ाने के लिए दिखाकर मीडिया सूचना देने में आज पीछे रह गया है।

4.2.8. मीडिया में स्त्री

मीडिया हमेशा समाज को प्रभावित करने की क्षमता रखती है। समाज में जो हुआ, जो हो रहा है, जो होगा और जो होना चाहिए, अर्थात् समाज के हर परिवर्तन और सुधार पर पत्रकार की नजर है। वर्तमान समय में पत्रकारिता का महत्त्व काफी बढ़ गया है। हर क्षेत्र की तरह पत्रकारिता में भी आज महिलाओं ने अपनी पहचान बनाई है।

बाहर से देखें तो आज भारत में न्यूज चैनलों, अखबारों व मैगजीन्स में बहुत सी महिलाएँ एंकर, संपादक और पत्रकार के तौर पर दिखाई देती हैं। लेकिन सच्चाई यह

---

[57] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.205

[58] वही, पृ.189

है कि पुरुष प्रधान संस्कृति में महिलाओं द्वारा तमाम गंभीर विषयों को उठाने और गंभीरतापूर्वक काम करने के बावजूद उन्हें बेहतर अवसर नहीं दिए जाते। आधुनिक मीडिया जगत में 'बोल्ड एंड ब्यूटीफुल' के लिए ही जगह है, न कि 'कर्मठ एवं संघर्षशील' महिला के लिए।

पत्रकारिता में इतने अवसर होने के बाद भी महिलाएँ करियर के रूप में इसे चुनने में इसलिए हिचकती हैं कि, एक तो पारिवारिक मामलों के कारण और दूसरा स्वयं मीडिया ही है। एक व्यक्ति के रूप में, एक नारी के रूप में, एक पत्रकार के रूप में नारी की रोल को निभाते वक्त परिवार उसके केन्द्र में रहता है। जाने अनजाने कई जगह परिवार ही तय करता है कि उसे यह करियर के रूप में चुनना है कि नहीं। यदि करियर के रूप में चुना भी तो काम कितने समय करना है, कहीं जाना है या नहीं, किससे बात करनी है, नहीं करनी है जैसे सौ सवाल नारी के सामने आती है। यदि लड़की शादी करके जाती है तो उसे ससुराल की पसंद और न पसंद की ख्याल रखनी होती है। और अगर बीच में नौकरी छोड़कर चली जाती है तो मीडिया को वह भी नुकसान होता है, तो इससे बचने केलिए मीडिया ज्यादातर महिला के बजाय पुरुष को नौकरी पर रखना पसंद करती है। साथ ही देर रात आने-जाने को लेकर सुरक्षा की समस्या भी महिलाओं पर रहती है।

अगर इन सारी चुनौतियों को पार करके कोई महिला सामने आयी भी तो, मीडिया क्षेत्र में उसे कई जगह पर भेद भाव का सामना करना पड़ता है। कभी प्रमोशन नीति में भेद भाव होता है तो कभी काम में। और तो और कुछ अपवादों को छोड़ दे तो

उन्हें पुरुषों के मुकाबले कम तनख्वाह ही मिलते हैं। जबकि काम उन्हें पुरुषों के बराबर ही करना होता है।

हिंदी पत्रकारों के सपनों में महिलाएं ऐसी ही किसी कल्पनाओं में किसी की बाहों में नज़र आती हैं। उन्हें कभी किसी ने किसी मोर्चे पर रिपोर्टिंग करते नहीं देखा। लेकिन आज की स्थिति बिलकुल अलग है। फिर भी महिलाओं की आजादी और बराबरी पर लेख लिखने वाले कई पत्रकार साथियों ने उनके बालों, उनकी सैंडिल और हाथ के कंगन पर कई मौखिक किस्से तैयार किए हैं, जो अक्सर दबी जुबान में और पीठ के पीछे सुनाए जाते रहे हैं। बाहर यही सुनने को मिल रहा है कि, ''लड़कियां ऐश कर रही हैं और हम मर रहे हैं।''[59] लड़कियों पर यह आरोप हमेशा से रही है। रवीश कुमार की कहानी 'दीवारें फांदते स्पाइडरमैन' में भुज के भूकंप वक्त मेल आता है कि दो लड़कों के साथ तीन लड़कियों के न्यूज़ कवर करने केलिए भेज रहे थे। तभी एंकर राजेश कहता है कि ''इतनी बड़ी त्रासदी में श्रृंगार रस की देवी क्या करेगी?''[60] यानी पत्रकार या पुरुष रिपोर्टर अब भी महिला पत्रकार की रिपोर्टिंग या उनकी काबिलियत पर शक करता है। मीडिया में लड़कियां पहले नौकरी की तलाश में आती है। बाद में नौकरी में ठिकने केलिए वे अपनी नियत धीरे-धीरे बदलने लगती हैं। 'तीसरा कंडोम' कहानी में एक खुबसूरत एंकर नौकरी के चक्कर में कभी चैनल हेड के पास तो कभी आउटपुट एडिटर के पास तो कभी एचआर मैनेजर के पास जाती रहती है। और एंकर इंचार्ज के आगे फट पड़ती है कि ''आप बताते क्यों नहीं मुझे कहां जाना है, किसके पास जाना है,

---

[59] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.248

[60] वही, पृ.251

घर पर जाना है या किसी होटल में जाना है.. चुपचाप इशारे क्यों करते हैं.. साफ-साफ बताइये मुझे किसके साथ जाना है.. मुझे परेशान क्यों कर रहे हैं..''[61] इस तरह कभी नौकरी केलिए तो कभी नौकरी बनाये रखने केलिए, कभी प्रमोशन के लिए तो कभी यश केलिए लड़कों की तरह लड़कियां कुछ भी करने केलिए तैयार होती है। कभी मज़बूरी में तो, कभी स्वेच्छा से लड़कियां ऐसे करती हैं।

प्रियदर्शन की कहानी 'कैसी-कैसी लड़कियाँ' में चैनल क्षेत्र में कार्यरत स्त्रियों की ज़िन्दगी के बारे में चर्चा हुई है। लड़कियों को मीडिया में नौकरी पाने बहुत पापड़ बेलने पड़ते हैं। नौकरी मिला भी तो, उसे बनाये रखने में बहुत सी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। यहां तक कि, स्त्रियों की शादी में भी बाधाऐं आ रही हैं। प्रस्तुत कहानी के पात्र ऋतु कहती है - ''अरे इस चैनल की लड़कियों से कौन बाहर वाला शादी करेगा?''[62] अर्थात् चैनल में काम करनेवाली लड़कियों का चित्र इस तरह खराब हो रही है कि उन्हें एक अच्छी ज़िन्दगी मिलना भी मुश्किल सी हो गयी है। लेकिन अब की स्थिति में तो काफी परिवर्तन आया है।

चैनल में हो रही लड़कियों के एक्सप्लॉयटेशन के चित्रण के साथ उनकी सुरक्षा के बारे में चर्चा करती कहनी है शालिनी जोशी की 'स्याह-सफेद'। कहानी का मुख्य पात्र नीलम टीवी मीडिया का वर्तमान और भविष्य पर आयोजित वर्कशॉप में पूछे गये सवाल से अचकचा जाती है कि, ''मैडम, टीवी पत्रकारिता लड़कियों के लिए कितनी सेफ़ है? मैं भी टीवी रिपोर्टर बनना चाहती हूं लेकिन मां-पापा मना करते हैं कि फ़िल्म इंडस्ट्री की

---

[61] कथादेश - अगस्त, 2009, पृ.211

[62] हंस - जनवरी, 2007, पृ.67

तरह ही यहां भी लड़कियों का बहुत एक्सप्लॉयटेशन होता है।''[63] नीलम इसका संतुलित जवाब तो देती है। लेकिन वह खुद पहली बार आउटस्टेशन शूट जाते डर-डरकर ही वापस आयी थी। नीलम वर्कशॉप में आयी लड़की से यह कहना भी चाहती थी लेकिन कह नहीं पायी। एक्सपोज़र मिलने के चक्कर में लड़कियां आउटस्टेशन जाने केलिए तो तैयार होती हैं। लेकिन वे कभी आउटस्टेशन के बहाने पूरा दिन लड़कियों को साथ लेकर चलने वाले सिनियर रिपोर्टर के इरादे समझ नहीं पाती। इस तरह चैनल में आने, उसमें बने रहने, नाम कमाने आज भी लड़कियां निरंतर परिश्रम करती रहती है।

4.2.9. लाइव के लफड़े

तकनीकी के विकास ने मीडिया को बहुत सी सुविधाएँ प्रधान की है। उसमें से एक है लाइव दिखाने के मीडिया की क्षमता। कोई भी कार्यक्रम सीधे जनता तक प्रसारित करना ही लाइव टेलिकास्टिंग है। इससे न्यूज़ की सार्थकता और अधिक बढ़ जाती है। लेकिन आज क्या हो गया है कि, घटना की हकीकत कहां तक लाइव दिखाना है यह रिपोर्टर ही तय करता है। अगर संपादक न्यूज़ से खुश नहीं है तो, रिपोर्टर को मीडिया प्रबंधक के हिसाब से न्यूज़ को बदलनी होगी।

पंकज मित्र की कहानी में किसानों पर आये कर्ज के कारण हो रही मृत्यु का रिपोर्टिंग करता मीडिया, कैसे उसका लाइव दिखाया है इसका चित्रण हमारे सामने रखा है। कहानी में एंकर किसानों की मृत्यु का रिपोर्टिंग इस प्रकार करता है कि ''तो हम दिखाएँगे अपने एक्सक्लूसिव 'क्राइम टाइम जागते रहो' में ये पूरा कार्यक्रम - 'हत्या या

---

[63] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.170

आत्महत्या' देखना न भूलिएगा रात्रि ग्यारह बजे और अब खास खबरें - प्रधानमंत्री ने किसानों के लिए किया खास राहत का ऐलान।....''[64] इस प्रकार एक सामाजिक मुद्दे को क्राइम में बदलकर लाइव खेलने में मज़बूर रिपोर्टर व उसकी रिपोर्टिंग के तरीके का जिक्र पंकज जी की कहानी 'आज, कल, परसों तक..' में देखा जा सकता है। इस तरह पत्रकार के दुर्दशा के बारे में चित्रित विभांशु दिव्याल की कहानी 'तीसरा कंडोम' में रेटिंग मिलने केलिए बलात्कार को सबसे ज़्यादा बिकने वाली न्यूज़ बनाकर घंटों भर लाइव खेलने वाले एंकर का लाइव रिपोर्टिंग को दिखाया गया है। ''चैनल बलात्कार पर खेल रहा है.. हमारे हाथ लगी है बलात्कारी दरिंदों की एक्सक्लूसिव तस्वीरें.. हम दिखा रहे हैं आपको एक-एक बलात्कारी की तस्वीर.. यही वे लोग हैं जो मासूम लड़कियों को फंसाते थे, उन्हें सड़क से उठाते थे। ये दरिंदे एक के बाद एक लड़की के साथ बलात्कार करते थे। इतना ही नहीं बलात्कार का एमएमएस बनाते थे। फिर अश्लील एमएमएस को सार्वजनिक करने की धमकी देकर लड़कियों को ब्लैकमेल करते थे.. देखिये बलात्कार की पूरी दास्तान.. चैनल दिखा रहा है एक-एक बलात्कारी की तस्वीर.. बलात्कारी नंबर एक, बलात्कारी नंबर दो.. पर्दे के फ्रेम में बलात्कारियों की विंडो बनती जा रही हैं.. एंकर चीखता जा रहा है..''[65] इस तरह लाइव में रेटिंग बढ़ाने आकर्षक शैली में एंकर संवेदनहीन होकर ख़बर देता है। स्वेच्छा से न सही मज़बूरी में मीडिया कर्मी को इस तरह के संवेदनहीन लाइव दिखाना पड़ता है।

---

[64] कथादेश - अगस्त, 2009 पृ.226

[65] वही, पृ.214

राणा यशवंत की कहानी 'ब्रेकिंग न्यूज़' में उन्होंने लाइव रिपोर्टिंग के बीच फसे रिपोर्टर का चित्रण दिखाया है। कथानायक प्रसन्न की आंखों के आगे सीरियल ब्लास्ट की सारी तस्वीरें लाइव दिख रहा था। क्षत-विक्षत लाशें.. चार साल की बच्ची जिसके दोनों पैर उड़ चुके थे और मां-बाप बारूदी साज़िश का शिकार हो चुके थे.. बूढ़ी औरत जो अपने बेटे की लाश देख छाती पीट रही थी.. अस्पताल का चीख़-कोहराम.. सब कुछ लाइव। यह सब देखकर प्रसन्न का मन द्रवित हो रहा था। लेकिन ब्यूरो चीफ को प्रसन्न से ही लाइव करवाना था। अंत में न चाहते हुए उसे लाइव करना पड़ता है। उसे बार-बार कहना पड़ रहा था कि ''मुंबई में ट्रेनों में हुए सीरियल ब्लास्ट की हम आपको सीधी तस्वीरें दिख रहे हैं और मुमकिन है कि कुछ तस्वीरें आपको विचलित कर दें।''[66] इस तरह आंखों के सामने दिखता हृदयहीन ख़बरों को न चाहते हुए भी रिपोर्ट करने में रिपोर्टर मज़बूर है।

4.2.10. संवेदनहीन मीडिया धर्म

आज पेशेवर पत्रकारों के संदर्भ में यह आरोप लगाया गया है कि वे मीडिया की नैतिकता का खयाल रखे बिना ख़बरों की एजेंडा तय करते हैं। आज की स्थिति ऐसी हो गयी कि, मीडिया में काम करने केलिए मीडिया कर्मी को संवेदनहीन होना पड़ता है। शिवा शंकर पांडेय की कहानी 'गिद्ध' में नायक प्रशिक्षु ख़बर की तलाश में था। शाम होने को थी पर वह ख़बरों से महरूम था। उसी बीच उर्सला अस्पताल में एक बर्न केस आने की सूचना मिली। केस सीरियस थी, परिजन उनके बच जाने की दुआ कर रहे थे।

---

[66] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.157

उन्हीं के पास से थोड़ी दूर बैठा रिपोर्टर मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था कि आज कोई ख़बर नहीं है, तीनों घायलों के मर जाने से उसे एक सालिड ख़बर मिल जाएगी। लेकिन डॉक्टरों ने जो कुछ बताया उसे सुनकर घायलों के परिजनों में खुशी का ठिकाना न रहा लेकिन रिपोर्टर को काटो तो खून नहीं ऐसी स्थिति थी। डॉक्टरों ने बताया कि तीनों घायलों को होश आ चुका है, वे जल्दी ही ठीक हो जाएंगे। घायलों के परिजन खुशी से कहा, ईश्वर ने हमारी प्रार्थना सुन ली। उधर, बेचारा रिपोर्टर चेहरा लटकाये अस्पताल कैंपस से बाहर निकला। उसके मुंह से अचानक निकला - ''भगवान तुम भी बड़े वो हो, हमारी प्रार्थना काहे नहीं सुनी। एक सालिड ख़बर हाथ में आने के बाद निकल गयी। ख़बर के बगैर खाली हाथ आफिस कैसे जाये?''[67] इस तरह संवेदनहीन होता पत्रकार की मानसिकता का चित्रण यहां मिलता है। न्यूज़ न मिलने पर तनाव ग्रस्त रहता पत्रकार कोई भी न्यूज़ दिखाने में तैयार रहता है।

पंकज मित्र की कहानी 'आज, कल, परसों तक' की कहानी में कर्ज के कारण आत्महत्या किया बलराम सिंह की मौत को क्राइम एंगल से दिखने के लिए इनपुट एडीटर चमननाथ खत्री शिवकुमार पर प्रेशर डालता है। ''अरे सुसाईड क्राइम नहीं है क्या। वजह खोजो। घर में खोजो, बाहर खोजो,..... पकड़ो किसी पुलिसवाले को, किसी का भी फोनोथ्रू तो करवाओ कम से कम।''[68] यानि न्यूज़ चाहे कोई भी हो बस रेटिंग लाने होगे। उसमें किसी की संवेदना का कोई स्थान नहीं।

---

[67] कथादेश - अगस्त, 2009, पृ.235

[68] वही, पृ.226

चैनल को एक्सक्लूसिव न्यूज़ दिलाने की ख़ातिर संवेदनहीन बनता जा रहा रिपोर्टर का चित्र खिंचा है मलय जैन ने 'एक्सक्लूसिव' कहानी में। एक बार जब विस्फोट हुआ तब रिपोर्टर विप्लव कैमरामान के साथ वहाँ फैली लाशों के विजुअल्स निकालना शुरू किया अचानक एक दृश्य पर कैमरा फोकस होते ही सहायक चीख पड़ा -''सर, देखिये.... एक छोटी सी बच्ची नीचे गिर गयी है, यदि किसी के पैरों तले आ गयी तो.... मैं उसे उठाने जा रहा हूँ। विप्लव ने सहायक को डपटा; बेवकूफ, कैमरा उसी बच्ची पर फोकस रख। यही तो वह एक्सक्लूसिव सीन है जो सिर्फ हमारे चैनल पर आएगा और हमें नंबर वन तक पहुँचाएगा''[69] पूरे दिन यही न्यूज़ दर्शकों तक पहुँचे। इस प्रकार एक्सक्लूसिव के पीछे जाकर पत्रकार अपने संवेदना खो रहे हैं। नीरेन्द्र नागर की कहनी 'यू टर्न' में रिपोर्टर की बदलती मानसिक संवेदना को दिखाया है। जिसमें, टीवी स्क्रीन पर एक इंसान जल रहा था तो दूसरी ओर मीटिंग में बैठे हर व्यक्ति की आंखों में खुशी के दिये चमक रहे थे। सौदा हो चुका था कि ''विजुअल एक्सक्लूसिव है - किसी और चैनल को नहीं मिलेगा। सागर ने अचानक महसूस किया कि उसे भी अंदर से खुशी हो रही है। वह चौंक गया, यह क्या! क्या वह भी धीरे-धीरे बदल रहा है।''[70] इस तरह एक्सक्लूसिव न्यूज़ दिखाते-दिखाते रिपोर्टर धीरे-धीरे संवेदनहीन होता जा रहा है।

संवेदना केलिए मीडिया में कोई स्थान नहीं है। हृषीकेश सुलभ की कहानी 'वधस्थल से छलाँग' में इसका चित्रण हमें मिलता है कि, रिपोर्टर रामप्रकाश तिवारी जब क्राइम डेस्क में चार्ज लिया तो, उसी दिन शाम को एक घटना घटी। पिता के साथ रिक्शे

---

[69] कथादेश - अगस्त, 2009, पृ.222

[70] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.196

पर जानेवाली लड़की को गुंडों ने बीच सड़क पर घेर लिया और पिता के सामने लड़की की साड़ी उतार दी। इसे ख़बर बनाकर सूर्यनारायण जी को सौंपा तो उन्होंने बोला ''तिवारी प्रभु! भाग्यशाली हैं आप। पहले ही दिन ऐसी महत्त्वपूर्ण खबर।''[71] उसने घूरकर सूर्यनारायण जी को देखा। संवेदना नष्ट हुए चैनल केलिए न्यूज़ सिर्फ एक स्टोरी मात्र है। उससे ज्यादा कुछ नहीं।

मीडियावालों को केवल ख़बर से मतलब होता है और वह भी तब तक जब तक पहली ख़बर को पीटने कोई दूसरी ख़बर न आ जाए। वे कभी किसी का दर्द नहीं समझते या समझना चाहते हैं। अनुराग मुस्कान की कहानी 'ये साल्ले टीवीवाले' में रिपोर्टर से कहता है कि, ''पहले तो सवाल पूछ-पूछकर बेचारे आदमी को मार डालते हैं और जब आदमी मर जाता है तो उसके घरवालों से पूछते हैं कि जी आपको कैसा लग रहा है?''[72] इस तरह मीडिया इतना संवेदनहीन हो गया है कि उन्हें बस स्टोरी से मतलब है और किसी से नहीं।

कभी मीडिया इतना अनैतिक हो जाता है कि मानव जीवन उनके सामने तुच्छ हो जाता है। पंकज श्रीवास्तव की कहानी 'दिव्या, मेरी जान' में दिल्ली में एक मेडिकल छात्रा के साथ बलात्कार होता है। न्यूज़ रूम में सीनियर प्रोड्यूसर शंकरदेव स्टोरी के लिए चिल्ला रहा था - ''तुरंत लाओ स्टोरी। अपमार्केट रेप है, दिन भऱ खेलेंगे। एक ओबी वैन लड़की के हॉस्टल, एक अस्पताल और एक पुलिस हेडक्वार्टर ले जाओ..

---

[71] कथादेश - अगस्त, 2009, पृ.219

[72] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.270

जल्दी करो। विजुअल्स सबसे पहले हमारे यहां चलने चाहिए।''[73] पहले आने की होड़ ने मीडिया को संवेदनहीन व मीडिया कर्मी को अनैतिक बनाता जा रहा है। चैनल को हमेशा अपना प्रोफाइल का ख्याल रहता है। उन्हें ऐरे-गैरे के न्यूज़, न्यूज़ नहीं लगता है। 'दिव्या, मेरी जान' कहानी में शहर के झोंपड़पट्टी में हुए बलात्कार की ख़बर क्राइम एडिटर को पसंद नहीं आई थी। उसने कहा कि, ''कोई अप मार्केट रेप लाओ, देखना कैसे तानते हैं।''[74] यह सुनकर रिपोर्टर चकरा जाता है कि रेप लाना भी कोई कला है? अर्थात् मीडिया को किसी से आज संवेदना नहीं रहा। उन्हें बस अप मार्केट न्यूज़ की पड़ी है।

4.2.11. राजनीति व मीडिया

मौजूदा दौर में राजनीति हमारे जीवन में इस कदर छाई है कि उसके बिना ख़बरों की अपेक्षा नहीं की जा सकती। संवाददाता के लिए यह बड़ी चुनौती है कि जो राजनीति आज है, वो उसे उसी रूप में कैसे प्रस्तुत करें। बिना परिणामों को देखते हुए एक मिशन की तरह रिपोर्ट करना ही पत्रकारिता का लक्ष्य रहा। लेकिन आज हम अकसर देखते हैं कि राजनीतिक खबरें इस तरीके से लिखी या पेश की जाती हैं कि उसमें न्यूज़ का हिस्सा न के बराबर रह जाता है। 'सातवाँ आसमान' में चेयरमैन बिंद्रा वही ख़बरें चलाना चाहता है जो उसके और राजनीति के अनुकूल रहे। बिंद्रा का राय है - ''हम भी जानते हैं कि राजनीति की ख़बर जानी चाहिए लेकिन सिर्फ चुनिंदा ख़बरें होनी

---

[73] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.211

[74] वही, पृ.212

चाहिए।''[75] संदेश साफ था कि राजनीति की वही ख़बरें जानी चाहिए जो राजनीतिज्ञ चाहते हैं।

राजनीति का ख़्याल रखने से मीडिया का ही फायदा है। मालिक तो मीडिया को कमाऊ बनाने की सोच में है। उसका एक मात्र मंत्र राजनीति है। जैसे 'टारगेट' कहानी में चैनल की कमाई बढ़ाने की बात होती है तो, गुप्ता जी कहता है ''चतुर्वेदी जी, आप फौरन जुट जाइए.. जितने भी मंत्रियों और राज्य सरकारों से आपके संपर्क हैं उनसे क्या मदद ली जा सकती है, लीजिए''

चतुर्वेदी - ''सर मैंने ऑलरेडी काम शुरू कर दिया है.. कल मैं दो मुख्यमंत्रियों से मिल रहा हूं.. उनसे कुछ ऐसी सेटिंग करने की कोशिश करूंगा ताकि नियमित धन आए.. उनका और उनकी पार्टी का थोड़ा ख़्याल रखना पड़ेगा''

गुप्ता - ''थोड़ा नहीं पूरा ख़्याल रखिए.. हमें पैसे से मतलब है.. हमें इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि उनका प्रोपेगंडा करना पड़ रहा है।''[76] इस तरह चैनल हो या अन्य मीडिया, राजनीति को खुश करके ही अपने आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करता है। अर्थ केलिए मीडिया अपने आपको बदलने केलिए सदैव तैयार है।

4.2.12. प्रतिबद्धता नष्ट मीडिया कर्मी

किसी भी अखबार को उठाकर देखें तो उसका पहला पृष्ठ अपराधिक ख़बरों को ज्यादा महत्व देता हुआ मिलेगा। यही हाल आज इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भी हो गयी हैं। अपराधिक या सनसनीखेज घटनाओं को ज्यादा-से-ज्यादा बल देकर मुख्य शीर्षक में

---

[75] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ. 257

[76] वही, पृ.87

उभारता है। वास्तव में मीडियावाले रिपोर्टिंग नहीं करते, बल्कि रिपोर्टिंग के नाम पर लोगों के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। एक्सक्लूसिव स्टोरी देने के आदी बने मीडिया अब धीरे-धीरे अपनी प्रतिबद्धता भूल रही हैं।

समाज में हो रही अनीतियों के खिलाफ आवाज़ उठानेवाला पत्रकार अब आँखें मूंद कर ही चल रहे हैं। हृषीकेश की कहानी 'वधस्थल से छलाँग' में रिपोर्टर रामप्रकाश तिवारी को ख़बर मिलता है कि कुछ गुंडों ने बीच सड़क पर पिता के सामने लड़की की साड़ी उतार दी। सम्पादक से इस न्यूज़ के बारे में बात की तो वे कहने लगे कि, ''.... पुलिस नहीं पहुँची थी वहाँ, इसका मतलब यह नहीं होता कि पुलिस के स्टेटमेंट में बगैर आप क्राइम रिपोर्ट फाइल करके चले जाएँ। क्राइम रिपोर्ट के लिए घटना से ज्यादा महत्त्व तथ्य को होता है, जो पुलिस के पास मिलता है। समझे आप... पहले पत्रकारिता सीखिये, फिर जवाब तलब कीजिएग... और आपने हिम्मत कैसे की मुझसे...सम्पादक से जवाब तलब करने की? घटना की रिपोर्ट करते हुए आप पत्रकार नहीं, उस लड़की के आशिक हो गए हैं....आपका काम विक्टिम का पक्ष लेना नहीं है...जाइये,...''[77]। मीडिया की प्रतिबद्धता ख़बर दिखाने तक ही है। इन्साफ तो जनता को हुद ढूँढनी है।

प्रतिबद्धता नष्ट मीडिया आज समाज से हटता जा रहा है। 'दिव्या, मेरी जान' कहानी में पंकज श्रीवास्तव जी इसकी ओर इशारा किया है कि एक बार बुंदेलखंड में कर्ज़ में डूबे किसानों की खुदकुशी पर बात करने की आइडिया दिया तो वागीश भड़ककर बोला- ''फालतू का हल्ला है। दुनिया में सबसे कम खुदकुशी भारत में होती

---

[77] कथादेश - अगस्त, 2009, पृ.220

है। क़रीब एक लाख लोग जान देते हैं हर साल, जिनमें किसान सबसे कम होते हैं। और विजुअल क्या होंगे.... वही फटी धरती.... मुरझाई फ़सलें.... सूखी नहरें.... ख़राब पड़े ट्यूबवैल और चीकट चेहरे। वैसे भी कर्ज़ वापस नहीं कर पाएंगे तो मरेंगे ही साले। कर्ज़ लेने के पहले क्यों नहीं सोचते?''[78] इस तरह समाज के समस्या को सरल बनाकर रेटिंगवाली न्यूज़ के पीछे जाना ही मीडिया चाहता है। वागीश के इस सलाह के पीछे अमित को यह ज्ञान मिलता है कि, ''किसान-विसान छोड़ो, कुछ फोड़ो.. ऐसा कि आधे घंटे खेल सकें और टीआरपी मिले''[79] इस तरह मीडिया में न्यूज़ की सार्थकता कम हो गई है, और मसाला बढ़ गया है। अतः न्यूज़ अगर मनोरंजक है तो प्रकाशित हो जाती है, जबकि सूचना प्रधान खबरों का प्रकाशन कम हो गया है।

आज रेटिंग के चक्कर में मीडिया कैसी-कैसी न्यूज़ चला रही है कि लोग इस कौतूहल में देखते हैं कि जिन भूतों को वहम माना जाता था वह आज न्यूज़ चैनलों में कैसे जगह पा रहे हैं? वैसे मीडिया का यही कहना है कि जब डिमांड है तो सप्लाई होगी ही। प्रतिबद्धता नष्ट मीडिया को स्टोरी बस एक मुनाफा कमाने की प्रोडक्ट है और कुछ नहीं है। यहां व्यक्तिगत राय का कोई मतलब नहीं है। सब कुछ मार्केट फ़ोर्सेज़ ही तय करते हैं। न्यूज़ चैनल आज हज़ारों-लाखों नहीं, करोड़ों-अरबों का खेल हो गया है। आगे रहने केलिए सबकुछ करना पड़ता है। मीडिया, 'न्यूज़' को बस मार्केटिंग की चीज़ माना है। अमिताभ की कहानी 'होता है शबोरोज़ तमाशा मेरे आगे' में बॉस कहता है कि, ''सुनिए महाराज, हम भी मार्क्सवाद पढ़े हैं, लेकिन अब ये सब बिक नहीं रहा है। जो

---

[78] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.204

[79] वही, पृ.205

बिकता है वो दिखता है।''[80] इस तरह आज मीडिया कर्मी प्रतिबद्धता कम और मार्केटिंग सेन्स ज़्यादा लेकर चलनेवाला हो गया है।

समाचार चयन करते वक्त नटवर गइडलाइन देनी शुरू की, ''न्यूज़ किसी भी समाचार को छापने या किसी भी टॉपिक पर लेख लिखवाने से पहले आप अपने से पूछें कि क्या अपमार्केट घरों में चार भलेमानस इस पर चर्चा करना चाहेंगे? क्या सनसनी फैलाने, गुदगुदाने, डराने, हैरान करने, किसी का पर्दाफाश करने या कामुकता जगाने वाला है, अगर इन प्रश्नों का जवाब हो 'नहीं' तो उसे आप हरगिज नहीं छापेंगे''[81] आज मीडिया में न्यूज़ का मूल्य ही बदल गया। प्रतिबद्धता नष्ट मीडिया अपने हिसाब से ख़बरों को दिखाता है। उन्हें बस रेटिंग बढ़ाने केलिए मसालेदार न्यूज़ ही चाहिए।

4.2.13. प्रतिक्रिया

मीडिया जगत में बहुत सारे खेल होते हैं। नौकरी के ख़ातिर मीडियाकर्मी हां में हां मिलाकर चलता है। वास्तव में पत्रकार सब कुछ सहकर नौकरी में बने रहते हैं। सहने के भी एक हद होती है। जब सारे हदें पार करते हैं तब जाकर मीडिया कर्मी अपना प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगते हैं। 'बम विस्फ़ोट' कहानी में ख़बर में देरी आने पर चीफ़ हमेशा की तरह चीखने लगा। विपिन की सहनशक्ति जवाब दे गई! उसने फ़ोन पटक दिया। हिंदी में जितनी गालियां सीखी थीं उसके मुंह से धाराप्रवाह फूटने लगीं, बग़ैर यह सोचे कि दफ़्तर में लड़कियां भी होती हैं। ''साले एक नौकरी के लिए इतना चीखता है। जा छोड़ दी तेरी नौकरी, लानत है तेरे 28 हज़ार रुपए महीने पर। अब देखता हूँ तुझे

---

[80] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.189

[81] कथादेश - अगस्त, 2009, पृ.204

और तेरे चमचों को।''[82] चीफ़ की गालियाँ सहकर तंग हो चुका विपिन की ओर से ऐसी प्रतिक्रिया जायज है।

'दिव्या मेरी जान में' मीडिया के फालतू ख़बर की प्रस्तुति पर तंग आये रिपोर्टर के प्रतिरोध का चित्रण मिलता है। प्रस्तुत कहानी में रिपोर्टर अमित चैनल के करतूतों से तंग आकर अंत में भड़क जाता है। अमित को जब भूत की स्टोरी कवर करने केलिए प्रेरित किया तब वह कहा ''क्यों, भूत देखने का दावा करने वाले पागल नहीं होंगे इसकी क्या गारंटी है?.... अब अमित बहस के मूड में आ गया था। साइंस ने हमें इतनी बड़ी ताक़त दी है और हम उसका इस्तेमाल अंधविश्वास फैलाने में करें। कहां की पत्रकारिता है ये?.... मैं तो नहीं करूंगा ये सब.... अमित के स्वर में दृढ़ता थी।''[83] मीडिया कर्मी भी जानता है कि इस तरह के भूत-प्रेत की स्टोरी सिर्फ रेटिंग बढ़ाता और कुछ नहीं।

'हाय दिल्ली उर्फ एक दिल्ली-सिके की वाह' कहानी में अख़बार के मालिक से ज्यादा वहां के कर्मी नटवर अख़बार के प्रगति केलिए अंधविश्वास, सैक्स जैसे सनसनीखेज छापने में आगे रहता है। नटवर के इस प्रवृत्ति को देखकर मालकिन शशिबाला कहती है - ''मैं अंधविश्वास फैलाने के फेवर में नहीं हूँ। शशिबाला बस यही चाहती है कि, नई पीढ़ी के खातिर अपने अखबार को आधुनिक तो जरूर बनाएं लेकिन अश्लील हरगिज नहीं।''[84] इस प्रकार कभी-कभी मालिक भी अपना एतराज ज़ाहिर करता है। मीडिया केलिए काम करते-करते अपने आदर्शों से हटकर जिये मीडिया कर्मी

---

[82] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.245

[83] वही, पृ.206

[84] कथादेश - अगस्त, 2009, पृ.205

अंत में ही अपने काम के बारे में सोचने लगते हैं। 'उसका लौटना' कहानी में मालती जब नौकरी छोड़ने का फैसला लिया तो सब हैरान थे। लेकिन मालती ज़िद पर अड़ी थी। अब ये टीवी पत्रकारिता उसके बस की नहीं रही। ''इसे पत्रकारिता कहेंगे? ख़बरों की परिभाषा ही बदल दी। कौन से मूल्य और कौन से पैमाने? क्या सिर्फ अच्छे पैकेज की ख़ातिर खुद को मारकर काम किया जाए?''[85] इस तरह नौकरी के कारनामों से तंग आकर अंत में मालती नौकरी छोड़कर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है।

मुकेश कुमार की कहानी 'टारगेट' में चैनल घाटे में चलने पर इनकम लाने केलिए मालिक राकेश पर ज़ोर डालता है। राकेश साफ़-साफ़ कह दिया कि ''हम पत्रकार हैं हमसे पत्रकारिता करवा लो, मार्केटिंग नहीं होगी।''[86] इस प्रकार पत्रकार अपना प्रतिरोध दिखाता है। किन्तु इसकी बहुत बड़ी कीमत राकेश को चुकाना पड़ता है। उसे मालिक के खिलाफ जाने पर नौकरी से इस्तीफ़ा तक देना पड़ता है। अधिकांश लोग नौकरी जाने के डर से ही चुप चाप रहता है। पर कभी-कभी इनकी यही चुपी प्रतिरोध का स्वर भी ले लेता है।

4.2.14. मज़बूर मीडिया कर्मी

नौकरी के सामने मीडिया कर्मी हमेशा मज़बूर है। वे बढ़े उम्मीद के साथ मीडिया में काम करने आते हैं। लेकिन उन्हें कभी अपने हिसाब से न्यूज़ दिखाने का इजाजत नहीं है। न चाहते हुए भी मीडिया कर्मी को वैसे न्यूज़ दिखाने पड़ते हैं जो मैनेजमेंट को खुश रखता हो। वरना नौकरी नहीं बचेगा। शिवा शंकर पांडेय की कहानी,

---

[85] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.137

[86] वही, पृ.82

'गिद्ध' में बम-बम टाइम्स का 'प्रशिक्षु' रिपोर्टर ख़बर की तलाश में निकला था, उसे किसी भी हालत में ख़बर चाहिए थी। उस दिन उसकी तीन ख़बरें रिजेक्ट हो चुकी थीं। इंचार्ज ने डाउन मार्केट की लो ख़बर कहकर एक झटके में कंप्यूटर से फाइल डिलीट कर दी थी। रघु ने कहा, ''मैनेज बेस्ड पत्रकारिता की नब्ज पकड़ लो गाड़ी पार हो जाएगी। रघु की बात सुनकर वह (प्रशिक्षु) झुंझला उठा, बोला ख़बर गढ़ने का मतलब मनगढ़ंत तथ्यों के साथ पीत पत्रकारिता और मैनेज का तुम्हारा मतलब है - तेलू -सधे हाथ से तेल लगाने वाला।''[87] अर्थात् नौकरी बनाये रखने केलिए मैनेजमेंट जो न्यूज़ पसंद करते हैं उसे गढ़कर देना होता है। नौकरी के खातिर पत्रकार मालिक के हिसाब से न्यूज़ लाने केलिए मज़बूर है। 'गिद्ध' कहानी में नायक 'प्रशिक्षु' को नौकरी में बने रहने केलिए दूसरे कर्मी रघु समझाते हुए कहता है, ''किताबी ज्ञान, सामाजिक सरोकार की लाा कब तक ढोओगे। इसे छोड़ हालात को देखो, पीत पत्रकारिता और येलो जर्नलिज्म का रोना अब गुजरे जमाने की बात हो चुकी है। इसे पीत पत्रकारिता नहीं, प्रेत पत्रकारिता कह सकते हो। तेलू पत्रकारों का दौर है, साधने का टाइम है, साध सको तो साध लो, नहीं तो नौकरी से आउट, बाहर सड़क पर जाकर धक्के खाओ।''[88] यानी आदर्श को लेकर चलने से कुछ नहीं होगा, बल्कि मैनेजमेंट को खुश रखकर अपनी नौकरी बनाये रखने की सीख हर नये कर्मचारी को देता है। जो समझे वह बाजी मार लेता है, जो न समझे नौकरी से हाथ धो बैठता है। अधिकतर लोग मज़बूरी के खातिर

---

[87] कथादेश - अगस्त, 2009, पृ.235

[88] वही, पृ.235

नौकरी में कैसे भी करके बने रहते हैं। कभी-कभी उन्हें अपनी सृजनात्मकता को भी भूलना पड़ता है।

हृषीकेश सुलभ की कहानी 'वधस्थल से छलाँग' में अख़बार को संपादक चाहिए न कि साहित्यकार। पत्रकारिता पर ध्यान देनेवाले मीडियाकर्मियों को साहित्य की ओर आना मना है। यहां पत्रकार के सृजनात्मकता का कोई मूल्य नहीं है। प्रस्तुत कहानी में सम्पादक अपने भाषण में बताता है कि, "..... जो लोग अपने कवि-लेखक होने के गुरूर में इतराये फिरते हैं, वे अपना चाल-चलन बदल दें, वर्ना उन्हें सवेरा हाउस से नीचे फेंक दिया जाएगा।"[89] अर्थात् यहां साहित्य सृजन की क्षमता को नकारते हुए, पत्रकारिता पर, उसके मुनाफे पर पत्रकार को फोकस करने के लिए मज़बूर करता मीडिया जगत का चित्रण देखा जा सकता है।

जनता के लिए चैनल एक पटाख़े की तरह होता है जो आसमान की ओर उड़ता है, आसमान से टकराता है और चारों तरफ रौशनियां फैला देता है। और अंदर के मीडिया कर्मी को लगता है जैसे चैनल एक डायनासोर है, जिसका पेट कभी नहीं भरता और वह हमेशा आग उगलता रहता। मीडिया कर्मी को टीवी चैनल, भाप का इंजन सा लगता है जिसमें ख़बर रूपी कोयले, लगातार झोंके जाते हैं, वह गाड़ी को आगे तो दौड़ाता है लेकिन माहौल को थोड़ा मटमैला भी करता जाता है। लेकिन इसमें कुसूरवार कोई नहीं है। चैनलों में काम करने वाले हर शख़्स को हर महीने एक भारी-भरकम चैक चाहिए होता है और यह चैनलों में करोड़ों रुपया लगाने वाले मालिकों के

---

[89] कथादेश - अगस्त, 2009, पृ.218

लिए उनके हिसाब से न्यूज़ बनाकर देने से ही मिलेगा। विजय विद्रोही की कहानी में बताया गया है कि एडिटर को हर हफ़्ते कुछ नया, कुछ धमाकेदार चाहिए था और टीआरपी का संकट हफ़्ते-दर-हफ़्ते बढ़ता जा रहा था। एक बार कार्यक्रम चलने पर चैनल टीआरपी में पिट जाता है। इसे देखकर नायक उलझन में पड़ जाता है कि ''क्या जो बिकता है वही दिखता है या जो दिखता है वही बिकता है?''[90] अर्थात् न्यूज़ आज बिक्री की चीज़ बन गयी है और मीडिया कर्मी को उसी प्रकार के न्यूज़ दिखाने केलिए विवश कर देता है। वे पापी पेट केलिए सब कुछ करने केलिए तैयार हैं।

कोई भी मीडिया कर्मी अपने आदर्शों से हटकर काम करना नहीं चाहता। मज़बूरन उन्हें सब करना पड़ता है। 'होता है शबोरोज़ तमाशा मेरे आगे' कहानी में विनय सनसनीखेज वाली ख़बरों को रिपोर्ट करने से हिचकता है तो बॉस कहता है, ''आपके रोकने से रुकेगा नहीं ये पागलपन। हर आदमी को शोहरत की भूख होती है और टीवी पंद्रह सेकेंड केलिए ही सही, उसे स्टार बनाकर भूख मिटा रहा है।''[91] छोटी-सी-छोटी सनसनीखेज न्यूज़ मीडिया के लिए बड़ी रेटिंग देनेवाली है। चाहे वह काण्ड शोहरत केलिए बनाया हुआ हो या सेलिब्रिटी बना देने केलिए हो। मज़बूर मीडिया कर्मी को सब कुछ चैनल हेड के हिसाब से करना होता है। वरना उन्हें दूसरी नौकरी ढूंटनी होगी।

4.2.15. कॉर्पोरेट या बॉस की खुशी

मीडिया में संपादक या प्रबंधक ही सब कुछ तैय करता है। कौन-सी न्यूज़ कब और कितने घंटे दिखाना है यह इनके हाथ में होता है। अगर ये मना किया तो, ख़बर

---

[90] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.59

[91] वही पृ. 189

नहीं चलेगा। अगर इन्हें खुश रखे तो, सेवा के अतिरिक्त मेवा भी मिलेगा। शिवा शंकर पांडेय की कहानी 'गिद्ध' में पत्रकारिता कोर्स के दौरान प्रशिक्षु रिपोर्टर को एक जुमला रटा दिया गया था कि ''बॉस इज आलवेज राइट''[92]। इसका मतलब यही है कि बॉस की हर कुंठा व सन को झेलो या फिर नौकरी छोड़ो। मालिक को बस मसालेदार न्यूज़ की ही आदत है इसलिए कैमरामैन व एडिटर वैसे न्यूज़ को लाते हैं जो मालिक के इच्छानुसार होता है। मालिक खुश हुआ तो नौकरी में तरक्की तो पक्की है। पंकज मित्र की कहानी 'आज, कल, परसों तक' में मालिक खुश होकर कहता है कि - ''अरे जियो बेट्टा। क्राइम स्टोरी में सेक्स एंगल, सुपरहिट जाएगी। तेरा प्रमोशन क्राइम में करवा दूँगा, लगे रहो''[93] यानी कि बॉस की खुशी ही नौकरी को बनाये रखती है। न कि मीडिया कर्मी का कर्म। चीफ़ या बॉस का चमचा बनकर रहने पर नौकरी हमेशा सुरक्षित रहती है। जैसे 'बम-विस्फोट' कहानी में संदीप हमेशा चीफ का चमचा बनकर रहता है। जो भी करें पूछकर करता है। दिन में कम से कम दो बार फ़ोन करके पूछता रहता है कि, ''चीफ़ ये जो स्टोरी है न, उसको खेल जाते हैं, इस पर झामपटाखा कर देंगे।''[94] इस तरह संदीप चीफ़ का प्यारा बनकर नौकरी बनाया रखता है।

बॉस को अगर कोई प्यारा या प्यारी लगे तो उनकी तरक्की पक्की है। 'मृगमरीचिका' कहानी में एंजला धीरे-धीरे बॉस की प्यारी बनती है। ''बॉस कभी बालों पर हाथ फेर देते तो कभी गालों को सहला देते।''[95] एंजला बुरा नहीं मानती। देखते ही

---

[92] कथादेश - अगस्त, 2009, पृ.235

[93] वही, पृ.228

[94] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.242

[95] वही, पृ.228

देखते उसका प्रमोशन हो जाता है। इस तरह नौकरी बचाने व बनाये रखने केलिए हर कोई अपना तरीका आजमाकर बॉस की खुशी को बनाये रखने की कोशिश करता है। न्यूज़ बॉस के हिसाब से चाहिए नहीं तो उसे चलायेगे नहीं। चाहे न्यूज़ एक्सक्लूसिव हो या रेटिंगवाली, चैनल को अपनी प्रोफाइल की चिंता भी रहती है। 'दिव्या, मेरी जान' में पूर्वी उत्तरप्रदेश में जापानी बुखार से एक महीने में सौ लोगों के मरने की ख़बर तब तक ठीक था जब प्रोड्यूसर को पता चला कि यह बुखार तराई के इलाक़े में रहने वाले गरीबों, खासतौर पर सुअर पालने वालों को शिकार बनाता है तो उसका मूड ख़राब हो गया। प्रोड्यूसर ने कहा - ''तो क्या टीवी के पर्दे पर सुअर दिखाएंगे? थोड़ा प्रोफाइल का भी सोचा करो यार..''[96] यानी कि बॉस या प्रोड्यूसर को अपने और चैनल की प्रोफाइल की चिंता इतनी सताती है कि उन्हें निचले लोगों की न्यूज़ डाउनमार्केट वाली लगती है। एक बार जब दलित लड़कियों के साथ रेप हुआ तो यही प्रोड्यूसर कहा कि, ''बिलकुल डाउनमार्केट रेप है। दलित लड़कियों के साथ तो ये होता ही रहता है।''[97] चैनल को बस रेटिंग वाली हैप्रोफाइल न्यूज़ ही चाहिए। जो एक्सक्लूसिव ख़बर लायेगा वही नौकरी में आगे रहेगा। अमिताब की कहानी 'होता है शबरोज़ तमाशा मेरे आगे' में बॉस थोड़े संयत लेकिन दृढ़ स्वर में बोले, ''देखिए ये डुगडुगी पीटने का खेल है। जितना बढ़िया खेल दिखाएंगे उतना ही आगे रहेंगे और आगे रहने में ही भलाई है।''[98] इस तरह अप्रत्यक्ष रूप में बॉस रिपोर्टरों को रेटिंग वाली ख़बर लाने की चेतावनी देता है। आज स्थिति यह

---

[96] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.211

[97] वही, पृ.211

[98] वही, पृ.189

हो गयी कि, जो बॉस की खुशी का ख़्याल रखेगा वही नौकरी में टिकेगा। नौकरी के लिए रिपोर्टर भी सबकुछ करने बाद्य हो रहा है। बॉस के अभाव में संपादक भी कभी-कभी बॉस बन जाता है। उन्हें भी बॉस की तरह अखबार की बिक्री की चिंता रहते हैं। बिक्री बढ़ाने के लिए सनसनीखेज न्यूज़ हो या क्राइम उन्हें कोई फरक नहीं है। उन्हें बस कैसे भी करके बिक्री बढ़ानी है। 'वधस्थल से छलाँग' कहानी में संपादक, पत्रकार तिवारी को निर्देश देता है कि, ''एक भी अपहरण की घटना छूटने न पाए.. खोजी रपटें तैयार कीजिये। अखबार की बिक्री पर नजर नहीं रखते हैं आप लोग। नजर रखिये, नजर''[99] इस तरह संपादक व बॉस का फर्मान आता रहेगा और मीडिया कर्मी को वैसे नाचना भी पड़ेगा। वरना नौकरी से फयर कर दिया जाता है। बॉस खुश तो सब खुश और नौकरी भी सुरक्षित रहती है।

आज चैनल हो या अखबार कोई घाटे केलिए नहीं चलाता। इसके लिए न्यूज़ का महत्त्व भी कभी-कभी अनदेखा कर देता है। वहां मालिक की मर्जि या पसंद के अनुसार ही सब चलता है। विभांशु दिव्याल की कहानी 'तीसरा कंडोम' में संपादक सबको समझाते हैं ''कोई मालिक, कोई कंपनी दानखाता नहीं खोलते। जो पूंजी लगाएगा वह मुनाफा चाहेगा। मुनाफा बिकने वाली जिंस से होता है। चाहे साबुन हो या समाचार.. और कंपनी हमें लाखों की सेलरी देती है तो मुनाफा कमाने केलिए देती है न कि अपना खजाना लुटाने केलिए। इफ वी वांट टु सरवाइव वी विल हैव टू लुक ऑफ्टर कंपनीज

---

[99] कथादेश - अगस्त, 2009, पृ.222

इन्ट्रेस्ट....''[100] यहां एक चेतावनी भी संपादक देता है कि, नौकरी पर बने रहने केलिए सबकुछ करना है जो मालिक चाहता है वरना नौकरी से हाथ धो बैठोगे।

4.2.16. आपसी होड़

मीडिया की दुनिया एक चमकदार और ग्लैमरस इंडस्ट्री हमारे सामने खोल दी है। इसकी चमक-धमक देखकर ही अधिकतर लोग मीडिया को अपना करियर बनाया। उस करियर में बने रहने केलिए एक दूसरे के बीच होड़ भी ज़ारी हो गया है। आज मीडिया जगत में नए-नए चैनल आ गए। हर एक की अदा निराली, रंग-रूप अनोखा। कॉम्पीटीशन, टीआरपी की मार यानी.... हफ़्ता ख़त्म होते हर शख़्स अपना नाम देखने के लिए सिर पर कफ़न बांधे तैयार रहता है। अतः नौकरी में एक-दूसरे के आगे आने की होड़ हमेशा से देखी जा सकती है।

परवेज़ अहमद की 'सातवाँ आसमान' कहानी में कर्मचारियों के बीच का षड्यंत्र का चित्रण दिखाया है। जैसे कि कोई नौकरी में नम्बर वन बनना, उसके अपनी क़ाबिलियत का नतीज़ा माना जा सकता है। जब क़ाबिल होते हुए भी कुर्सी से उतारा जाता तो उसके पीछे, अपने साथियों का षड्यंत्र अवश्य दिखाई पड़ता है। ऐसे में जो इंक्रीमेंट मिलता है वो उनके नाम और जो प्रमोशन, वह भी उनके खाते में जाता है। और तो और लड़कियाँ तो एक दूसरे की चुगली कर के नौकरी बचाकर रखती है। प्रस्तुत कहानी में संजना को बुलाकर सीमा के बारे में पूछता है तो वह बताती है ''सर, कुछ

---

[100] वही, पृ.213

काम नहीं करती''[101] इस तरह मीडिया में मीडिया कर्मी ही एक दूसरे की बुराई करके नौकरी बचाये रखने की कोशिश करते रहते हैं।

नौकरी जाने पर बदला लेते हुए दूसरे को नौकरी से बाहर करने की कोशिश भी मीडिया में देखा जा सकता है। 'विस्फोटक' कहानी में नायक 'समरेन्द्र' एक्सक्लूसिव न्यूज़ दिखाया तो दूसरे प्रतिद्वंद्वी चैनल स्काई के सीनियर टीवी रिपोर्टर चंद्रशेखर उपाध्याय से इस ख़बर छूट जाने या यूं कहें कि छोड़ दिए जाने पर नौकरी से हटा दिया जाता है। चंद्रशेखर को इसके पीछे 'समरेंद्र' की साज़िश दिखाई पड़ी। तब से वह समरेंद्र को सबक़ सिखाने का मौका ढूंढ रहा था। और एहम मौके पर चन्द्रशेखर, 'समरेंद्र' के ब्यूरो चीफ़ और एसाइनमेंट हेड तक यह अफवाह फैलाई कि, ''समरेंद्र ने अपने ट्रैवल एजेंट मित्र से तगड़ी वसूली की है।''[102] तब से समरेंद्र के प्रति ब्यूरो और डेस्क का रवैया बदलने लगा। दूसरे की झूठी शिकायत या चुगली 'समरेंद्र' की निष्ठा और ईमानदारी पर इतनी भारी पड़ जाएगी यह वह कभी सोचा ही नहीं था। मीडिया में मात्र टिकना नहीं, बल्कि आपसी होड़ में एक-दूसरे को गिराने में भी मीडिया कर्मी हिचकते नहीं है। इस प्रकार आपसी होड़ में एक दूसरे के पहले आने की दौड़ मीडिया में अक्सर देखा जा सकता है। अर्थात् कोई नौकरी बनाये रखने इस खेल में हिस्सा लेता है तो दूसरा नौकरी में नंबर वन बनने केलिए आपसी होड़ में लग गया है। प्रतियोगिता के बीच ख़बर कैसा भी हो, बस अपना चैनल उसे पहले दिखाना है, बस यही रट लगा रखा है आज मीडिया। 'दिव्या, मेरी जान' कहानी में स्टोरी जैसे भी हो बस चैनल को पहले आने की होड़ है।

---

[101] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.263

[102] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.222

जिसके लिए भूत, प्रेत जैसे अंधविश्वासों का सहारा लेने में चैनल हिचकते नहीं है। प्रस्तुत कहानी में रिपोर्टर इस तरह के न्यूज़ कवर न करने पर दोस्त कहता है कि, ''सोच लो, हम नहीं करेंगे तो कोई और फोड़ देगा स्टोरी।''[103] इस तरह मज़बूरण रिपोर्टर को चैनल केलिए इस तरह की स्टोरी कवर करनी पड़ती है। नहीं तो दूसरे बासी मार देगा और नौकरी संकट में पड़ जाएगा। मुकेश कुमार की कहानी 'टारगेट' में राकेश जी ने अपराध, भूत-प्रेत या सनसनीखेज़ ख़बरों का सहारा न लेकर, एक प्रोग्रेसिव एप्रोच के साथ समाचारों को ट्रीट करना शुरू किया। मगर राकेश जी के विरोधियों को यह हजम नहीं हुआ। वे राकेश जी को इस तरह से घेरेबंदी की कि राकेश जी कमज़ोर पड़ते गए। और अंत में ख़बर आया कि, मालिक से अनबन के चलते राकेश जी ने इस्तीफ़ा दे दिया। यह सुनकर सुभाष कहा-''क्या गुरु, राकेश जी की छुट्टी करवा दी..!''[104] इस तरह आपसी होड़ कभी-कभी नौकरी पर भारी पड़ सकती है। और तो और पत्रकार एक-एक क़दम पर श्रेय लूटने की होड़ या अपनी गलतियां दूसरे के सिर मढ़ने की जुगत में लगे रहते हैं। ऐसे में चतुर लोगों की चांदी हो जाती है और बाकी लोग दिन-रात कोल्हू के बैल की तरह लगे रहेंगे।

4.2.17 गैर महत्त्वपूर्ण घटना को ख़बर बनना

मीडिया का दायित्व है समाज में हो रहे घटनाओं को पाठक या श्रोता तक पहूंचाना। लेकिन कभी-कभी पत्रकार भी न्यूज़ के मामले में असमझस में पड़ जाते हैं। समाज में लोगों की विविधता के अनुरूप भिन्न प्रकार के 'न्यूज़' भी आज देखा जा सकते

---

[103] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.206

[104] वही, पृ.75

हैं। उसकी प्रधानता भी लोगों के अनुसार बदलता रहता है। कोई वाणिज्यिक न्यूज़ पसंद करता तो कोई क्राइम स्टोरी पसंद करता है। किसी की दिलचस्पी खेल-खूद में है तो किसी की सनसनीखेज में होता है। कभी वे समाज से हटकर सेलिब्रेटीज के ज़िन्दगी पर झॉकता है। 'ट्रैकशॉट' कहानी में रिपोर्टर सौरभ 'नक्सली का अंत' स्टोरी बनाकर ले आता है। लेकिन डेस्क के सामने आज का सबसे बड़ा सवाल था कि, राखी सावंत के चुम्मे को कैसे एक्सक्लूसिव बनाकर दिखाएं? सौरभ गुप्त बोला,

''सर मेरे पास बड़ी ख़बर है।''

''अच्छा।''

''जी सर, एनकाउंटर में बड़ा नक्सली मारा गया है। हमारे पास एक्सक्लूसिव रिपोर्ट है कि....'' बाकि सुनने कि फुर्सत तक डेस्क के पास नहीं था वे लोग राखी सावंत के पीछे था। कुछ समय बाद ''.... हां बोलो सौरभ, क्या है तुम्हारे पास?''

''सर एक नक्सली एनकाउंटर में मारा गया है।''

''लेकिन एक्सक्लूसीव क्या है उसमें.....''

''सर पुलिस के मुताबिक वो चांदनी चौक को निशान बनाने जा रहा है।''

''अच्छा। हां, हां। ठीक है, तुम इसे एडिट करवाओ। सुबह के बुलेटिन में ले लेंगे।''

''सर सुबह तो पेपर में ख़बर आ जाएगी।''

''क्या बात कर रहे हो सौरभ तुम? एक्सक्लूसीव है तो पेपर में कैसे आएगा?''

''सर वो.....''

''ठीक है यार, एक नक्सली को लेकर क्यों भावुक हो रहे हो? कल बात करेंगे।''[105]

चौबीस घंटे के न्यूज़ चैनेल में कल बात करने का मतलब क्या होता है इस पर ज़्यादा सोचने की ज़रूरत नहीं है। मतलब रात गई, बात गई। स्टोरी गई। अगले दिन स्टोरी का

---

[105] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.284

कोई माई-बाप नहीं होता। ऐसे में जो समाज की स्थिति या घटना है वह जनता तक पहुंचने के बजाय जो गपशप समाज में हो रहा है वह श्रोता तक अधिक पहुंचता है। इसी प्रकार समाज में हो रहे घटनाओं से ज़्यादा गैर महत्त्वपूर्ण ख़बर को महत्त्व देनेवाले मीडिया का ज़िक्र करनेवाली एक और कहानी है, पंकज श्रीवास्तव की कहानी 'दिव्या, मेरी जान'। इसमें कैबिनेट मंत्री उर्मिलेश शास्त्री के पोते का मुंडन पर मुंबई से बार बालाएं आ रही हैं नाचने। रिपोर्टर अमित उस स्टिंग ऑपरेशन को डांट दिया। लेकिन प्रमोद ने कहा - ''ख़बर है तो खेलने लायक़। तुम्हें भी खूब लाइव का मौक़ा मिलेगा''[106]। इस तरह आज मीडिया गैर महत्त्व घटना को स्टिंग ऑपरेशन द्वारा लाइव दिखाकर रेटिंग बढ़ाने की व्यग्रता में है।

मीडिया की नीति आज बदल गयी है। कॉर्पोरेट के अनुसार ही मीडिया सबकुछ तैय करती है। 'यु टर्न' कहानी में रिपर्टरों से यही कहता है कि, ''एक बात ध्यान से सुन लीजिए और सभी को बता भी दीजिए। जो ख़बर जितनी बक़वास लगे, उस पर उतना ही जल्दी ध्यान दीजिए। सीरियस ख़बर में पांच मिनट की देर हो तो भी चलेगा लेकिन बक़वास ख़बर पर तुरंत कॉल कीजिए।''[107] इस तरह आज न्यूज़ की न्यूज़ वाल्यू ही नष्ट हो रही है।

4.2.18 अन्य समस्यायें

4.2.18.1 साहित्य के प्रति मीडिया

---

[106] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.209

[107] वही, पृ.198

चैनल पर साहित्य चर्चा तब होती है जब कोई ऐसा साहित्यकार मरता है जिसका फिल्मों या टीवी सीरियलों की दुनिया से वास्ता रहा हो मौत की ब्रेकिंग न्यूज़ से लेकर चिता जलने या दफ़्न होने तक चैनल साहित्य-साहित्य खेलता है। पर्दे पर लगातार उन फिल्मों या सिरियलों के टुकड़े दिखाते हुए, जिनसे उन साहित्यकार का वास्ता था। साथ में फिल्म स्टारों के साक्षात्कार। 'दिव्या, मेरी जान' में प्रोड्यूसर साहित्यिक ख़बर मिलते ही ऐसा ही करता है। वे साहित्य से अनजान है यह कभी दिखाता नहीं। लेकिन उसके हरकतों से यह साफ-साफ नज़र आता है कि वे साहित्य व साहित्यकारों से अनभिज्ञ है। जैसे ''कौन प्रसाद.. कवि थे? अच्छा.. तो क्या हुआ जो घर गिर गया। बनारस जाम हो गया क्या? कौन देखेगा ये स्टोरी?..''[108] इस तरह साहित्य के प्रति प्रोड्यूसर की नज़रिया को पंकज जी इसमें दिखाया है।

4.2.18.2 ख़बरों की प्रस्तुति

मीडिया में कौन-सी ख़बर कैसे देने हैं यह ख़बर पर निर्भर करता है। मनोहर श्याम जोशी की कहानी 'हाय दिल्ली उर्फ एक दिल्ली-सिके की वाह' में संपादक नटवर सिखाता है कि ''हम राजनीतिक समाचार लेख प्रमुखता से छापेंगे लेकिन उनका आकार छोटा रखेंगे और उनका सार बीच में ही बॉक्स बनाकर डाल देंगे ताकि लोगों का पूरा पढ़ने की बोरियत न झेलनी पड़े। तो आप लोग इस मूलमंत्र को याद रखें - जो हो सनसनीखेज उसी को समाचार कहेंगे। सेक्स, क्राइम और ग्लैमर इन तीन पर हम सबसे

---

[108] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.212

ज्यादा ध्यान देंगे।''[109] यानी कि रेटिंग बढ़ाने सनसनीखेज चाहिए। उसके लिए जो भी निम्न स्तर के न्यूज़ हो वे दिखाएगा। वैसे ही 'यू टर्न' कहानी में एक मुहल्ले में एक सूअरी के पैदा होने की ख़बर सुनी जिसकी थूथन गणेश की सूंड जैसी है तो तुरंत रिपोर्टर दौड़ा दिया। और नाग-नागिन और भूत-प्रेत वाली ख़बर की सूचना मिली तो तब भी संपादक, रिपोर्टर से तुरंत स्टोरी करने को कहता है। इस तरह आज कल के न्यूज़ की स्थिति को यहां पर व्यक्त किया है।

4.2.18.3 धमकियों का सामना

गोविंद पंत राजू की कहानी 'कौए' में चैनलों पर हो रहे राजनीति के दबाव एवं उससे रिपोर्टरों में होनेवाले असर को व्यक्त किया गया है। सत्ता जब पत्रकार सम्मेलन बुलाया तो उसमें पिछले दिनों में हुए दुर्घटना के बारे में पत्रकार पूछने लगता है तो नेता को बुरा तो लगा किन्तु उन्हें पता था कि यह लाइव दिखा रहे हैं। वह मामला संभालते हुए कहता है कि ''आप लोग कैसे-कैसे सवाल करते हैं? क्या हो गया है आप लोगों को? मौक़ा देखकर बात करनी चाहिए।''[110] कैमरों के पीछे से आया तीखा सवाल! रंग में भंग तो किया ही साथ में नेता जी को बुरा भी लगा। मगर चेहरे पर नाराज़गी ज़ाहिर नहीं होने दी। एक बार पहले, ऐसे ही एक मौक़े पर उन्होंने चैनल के संपादक तक को देख लेने की धमकी दे डाली थी। राजनीति का यही तरीका है कि ''पहले दोस्ताना

---

[109] कथादेश - अगस्त, 2009, पृ.204

[110] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.121

अनुरोध, फिर चेतावनीनुमा सलाह और फिर सीधे धमकी।''[111] यहां प्रेस की आज़ादी का कोई मतलब नहीं है। सब राजनीति ही तैय करता है।

4.2.18.4 मीडिया की नई नैतिकता

पत्रकारों की अपनी कुछ प्रतिबद्धता है और कुछ स्वनिर्धारित नैतिकताएँ है। लेकिन व्यावसायिक संस्थानों द्वारा नियंत्रित मीडिया नैतिकता को भूल चुका है। देखे जाए तो मीडिया में हत्या, साज़िश, धोखाधड़ी, अवैध संबंध, जालसाज़ी, देह व्यापार जैसे वाक्यों की बोलबाला ही है। इस तरह मीडिया की नैतिकता को लेकर आज गंभीर सवाल उठ रहा है। रवीन्द्र त्रिपाठी की कहानी 'उबकाई' में अनैतिकता में बदलता चैनल और उसमें फसनेवाला रिपोर्टर की दयनीयता को चित्रित किया है। कमलेश कुमार पहली बार जब क्राइम रिपोर्टिंग शुरू की थी तो अपना काम पूरा करने पर बहुत खुश पाता था। लेकिन धीरे-धीरे उसे अपने भीतर कुछ टूटता हुआ लगने लगा। किन्तु चैनल के दबाव ने उसे अनैतिक बनने केलिए इस तरह मज़बूर किया कि ''उसे उन्हीं ख़बरों में मज़ा आने लगा जिसमें सेक्स का कोई एंगल हो। हत्या या धोखाधड़ी के साधारण अपराध उसको बेमज़ा लगते। इस तरह की कोई स्टोरी उसे मिलती तो उसे थ्रिल नहीं लगता था। दूसरों की तरह वह भी मानने लगा कि टेलीविज़न पर सबसे ज्यादा सेक्स बिकता है।''[112] मीडिया में इस तरह के कुवासनापूर्ण चित्र देखकर दर्शकों की बुद्धि तो भ्रष्ट होने के साथ नैतिक मूल्यों का भी चुति हो रहा है।

---

[111] वही, पृ.123

[112] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.64

4.2.18.5 स्टिंग ऑपरेशन

राजनीति में तेजी से बढ़ते अपराध के कारण स्टिंग ऑपरेशन अनिवार्य हो गया है। भ्रष्ट नेताओं, अफसरों आदि के कारनामों को जनता के सामने लाना स्टिंग ऑपरेशन का कार्य है। स्टिंग ऑपरेशन केलिए अदम्य साहस की ज़रूरत है। समाज को सही रास्ते पर लाने और आम आदमी को जागरूक बनाना ही स्टिंग ऑपरेशन का लक्ष्य है। समाज में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार और अपराधीकरण के कारण आज स्टिंग ऑपरेशन का औचित्य बढ़ रहा है। गोविंद पंत राजू की कहानी 'कौए' में मंत्री और विधायकों के कारनामे टीवी पर दिखाने वाले रिपोर्टर अंत में अपराधियों के तरह कठघरे में चढ़ता है। और कमेटी ने अपना फैसला सुना दिया - ''स्टिंग ऑपरेशन किए ही नहीं जाने चाहिए.. अगर किए भी जाएं तो जिसके ख़िलाफ़ हों पहले उससे इजाज़त ली जाए।''[113] साथ ही कमेटी ने चैनल वालों पर कई और बंदिशें लगाने की भी सलाह दी। इस तरह आज कल मीडिया की आजादी भी दावे पर है। वे सत्ता के हाथ के कटपुतली बनते जा रहे हैं।

4.2.18.6 अंधविश्वास फैलाने में मीडियाकर्मी

मीडिया हर ख़बर को, हर घटना को नया आयाम दे रहा है। पत्रकारिता से पीत पत्रकारिता और अब प्रेत-पत्रकारिता का युग आ गया है। विजय विद्रोही की कहानी 'प्रेत पत्रकारिता' में रेटिंग बढ़ाने केलिए अंधविश्वास को दिखाने वाले चैनल की अनैतिकता का चित्रण हुआ है। कहानी का मुख्य पात्र 'रतन' को न्यूज़ चैनल के अपराध ब्यूरो में नौकरी मिली। उसे वहां पर अपराध ब्यूरो के रिपोर्टरों की ख़बरों को टीवी स्क्रिप्ट का

---

[113] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.124

रूप देना है। और तो और देश भर के संवाददाता जो विजुअल्स भेजते, जो इंटरव्यू भेजते, उन्हें काटता-छाटता और एक अच्छी अपराध कथा बनाना भी रतन का काम है। हर हफ्ते उसे स्ट्रिंगरों का फ़रमान आता है भूत-डायन-चुड़ैल-जिन्न ढूंढने का। चैनल के हिसाब से रतन अपने गाँव के एक हवेली को डरावना बनाकर वहां भूत-प्रेत की स्टोरी तैयार करना शुरू कर दिया। उसने कहा ''रूह और नाग-नागिन की लड़ाई। गज़ब आइडिया! टेलिविजन के इतिहास में पहली बार!''[114] इस तरह अंधविश्वास पर खेलकर रेटिंग बढ़ाना आज मीडिया में सामान्य सा हो गया है। पहली बार एक टीवी चैनल भूतों का 'लाइव' ले आया था। शाम सात से रात ग्यारह बजे तक कार्यक्रम चला। आखिर वह स्टोरी एडिटर के हिसाब से धमाकेदार टीआरपी वाली स्टोरी रही थी। असल में उसे नौकरी के ख़ातिर ही ऐसा करना पड़ा।

4.2.18.7 न्यूज़ की अदला बदली

आम आदमी की समस्याओं को मीडिया में जगह आज कम ही मिल रही है। इसी वजह से ख़बर या स्टोरी की कंटेंट बदल कर या कभी गलती से गलत ख़बर छापना आज स्वाभाविक हो गया है। प्रेत-पत्रकारिता कहानी में स्ट्रिंगर ने एक जिम मालिक की हत्या की ख़बर भेजी थी। उसका घर-परिवार उसी जिम की कमाई पर ही चलता था। एक दिन उसकी हत्या हो गई। फैक्स से स्क्रिप्ट आई थी और तीन दिन तक फैक्स यूं ही धक्के खाता रहा था। जब फैक्स याद आया तो उसके अक्षर कुछ साफ़ नहीं थे। ब्यूरो प्रमुख ने जिम को जीप पढ़ लिया। (वैसे भी स्ट्रिंगर ने 'जिम' को 'जीम' लिखा

---

[114] वही, पृ.58

था) बस जीप के स्टॉक निकाले गए और बढ़िया सी दर्द भरी ख़बर बनाई। वह जीप चलाता था। उसके परिवार की रोजी-रोटी का आधार जीप ही थी। एक दिन उसकी हत्या हो गई.. स्ट्रिंगर ने ख़बर देख फ़ोन कर दिया लेकिन अपराध ब्यूरो प्रमुख भड़क गए ''जीप हो या जिम, क्या फ़र्क़ पड़ता है.. आख़िर हत्या तो हुई.. रोजी-रोटी का आधार तो छीना.. ये साले स्ट्रिंगर बाल की खाल निकालते हैं!''[115] इस तरह गलत खबरें देकर जनता को धोखा में रखकर, सच्ची ख़बर से उन्हें वंचित रखता है।

4.2.18.8 न्यूज़ दिखाने से पहले

न्यूज़ लाने से कुछ नहीं होता है। उसे दिखाने के लिए सौ-सौ प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता है। कभी भी रिपोर्टर सीधे कोई न्यूज़ मीडिया में नहीं दे सकता है। उसके लिए ब्यूरो चीफ से लेकर मालिक तक के लोगों की मंज़ूरी चाहिए। 'डर लगे अपनी उमरिया से' कहानी में वाल्मीकि के अनुसार एक न्यूज़, ''रिपोर्टर ब्यूरो चीफ के सामने, ब्यूरो चीफ ईपी इनपुट के सामने। प्रोड्यूसर ईपी आउटपुट के सामने, ईपी आउटपुट न्यूज़ डायरेक्टर के सामने और न्यूज़ डायरेक्टर मालिक के सामने।''[116] इस प्रकार एक स्टोरी की प्रस्तुति होती है। वहां रिपोर्टर की अभिव्यक्ति का कोई मायना नहीं।

4.2.19 निष्कर्ष

नवउदारवाद से जो उपभोक्ता समाज का निर्माण हुआ उस पर व्यापार का प्रभुत्व देख सकता है। इसके फलस्वरूप ही मीडिया सार्वजनिक-व्यापारिक उद्यम से

---

[115] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.56

[116] सं.राजेन्द्र यादव - 'वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)', पृ.23

हटकर व्यापारिक-सार्वजनिक उद्यम बन गया, जिसे व्यापारिक हित ही संचालित करते हैं। मुनाफा कमाना ही इसका एक मात्र लक्ष्य बन गया है। मीडिया की बहुलता ने इसके बीच जंग छेड़ दी। और यही प्रतियोगिता बुद्धि ने पत्रकार को तनाव में डाल दी है। कभी स्टोरी की तनाव रहा तो कभी नौकरी जाने की डर हमेशा पत्रकार के सिर पर मंडराती रहती है। इसमें कभी न कभी बदलाव आना है नहीं तो मीडिया की गरिमा धीरे-धीरे नष्ट हो जायेगी। अतः मीडिया जगत में अनैतिक प्रवृत्ति इस कदर बढ़ गई कि हर ख़बर एक दूसरे को कुचलकर आगे बढ़ती जा रही है। यह अनैतिकता भरी ख़बर मीडिया कर्मी इसलिए दिखाते हैं कि ज़्यादा टीआरपी मिल सके। इस तरह समाज के कोने-कोने में व्यक्त अमानवीकरण का पर्दाफाश करने वाली मीडिया के अंदर हो रही जालिमी आचरणों का खुलासा इस अध्याय में हुआ है।

अध्याय : पांच

संस्तुतियां

संस्तुतियां

यह समाचार क्रान्ति का दौर है। प्रत्येक माध्यम समाज के विकास का प्रतिनिधि होता है। वैश्वीकरण के दौर में मीडिया पहले से अधिक आक्रामक हुई है। विविधता और बहुलता ने मीडिया जगत में जंग छेड़ दी है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में अस्स्योत्तर हिंदी कहानी में दिखाये गये मीडिया जगत की समस्याओं का सम्यक विवेचन, विश्लेषण एवं निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

''मीडिया जगत की समस्याऐं : अस्स्योत्तर हिंदी कहानियों में'' विषयक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने के उपरान्त इस विषय में भविष्य के शोध के लिए विनम्रतापूर्वक निम्नलिखित शोध संस्तुतियाँ प्रस्तावित करती हूँ -

1. प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की समस्याओं को अलग-अलग करके अध्ययन करना शोध दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होगा।

2. कहानी के अलावा साहित्य की अन्य विधाओं में मीडिया जगत की समस्याओं का विवेचन करना श्रेयस्कर होगा।

3. पत्रकार और गैर-पत्रकारों (संपादक, कैमरामैन, रिपोर्टर, के अलावा आने वाले प्रसारण तकनीशियन, ओबी ड्राइवर जैसे लोग) की समस्याओं का अलग-अलग अध्ययन नए आयाम प्रकाशित कर सकेगा।

4. स्त्री का चित्रण सर्वथा नूतन शोध सिद्ध होगा।

5. पारंपरिक व न्यूतन मीडिया जगत की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन शोध दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा।

6. मीडिया जगत की समस्याओं का सामाजिक पक्ष पर अध्ययन नए आयाम खोलेगा।

7. आर्थिक व पारिवारिक दृष्टि से मीडिया जगत का अध्ययन शोध के लिए श्रेयस्कर होगा।

उपसंहार

उपसंहार

संचार मानव-उत्पत्ति के प्रारंभ से चली आ रही एक अनवरत प्रक्रिया है। अतीत की ओर देखे तो, महाभारत कालीन आख्यान में प्रथम पत्रकार संजय अंधे धृतराष्ट्र के लिए 'कुरुक्षेत्र लाइव' प्रसारित करते हैं और पौराणिक आख्यानों में इसी तरह नारद और हनुमान जनसंचार के संवाहक के रूप में चित्रित हैं। आज जिस अर्थ में पत्रकारिता प्रचलित है, वह 17 वीं सदी की देन है और तभी से इसे प्रेस के रूप में जाना जाता रहा है लेकिन 20 वीं सदी में रेडियो टेलिविजन और इंटरनेट के आने के कारण सूचनाओं के अनेक माध्यम हो गये और इसे मीडिया कहा जाने लगा। इस तरह प्रिंट पत्रकारिता, रेडियो पत्रकारिता, टीवी पत्रकारिता आदि के रूप में इसका वर्गीकरण होने लगा।

तकनीकी क्रांति के पूर्व लोकमाध्यमों की समृद्ध परंपरा रही हैं। लोकगीत, नाटक, कठपुतली, नौटंकी, स्वाँग, खेल-तमाशा, नृत्य आदि जनसंचार की दृष्टि से भारत में प्रचलित प्राचीन परंपरागत जातीय व प्रान्तीय लोकमाध्यम रहे हैं। सूचना प्रौद्योगिकी की अभूतपूर्व क्रान्ति ने आज मीडिया को सबसे बड़ी ताकत का पर्याय बनाया। जिस तरह मीडिया की संख्या बढ़ती गयी उसके बीच प्रतियोगिता भी बढ़ती गयी। मीडिया के इस विस्फोट ने नैतिक-अनैतिक, श्लील-अश्लील के न जाने कितने सवाल उठाए हैं। प्रस्तुत शोध प्रबंध में मीडिया जगत की इन्हीं समस्याओं को कहानी के माध्यम से पहचानने की कोशिश हुई है।

हर युग में जनसंचार के अपने कुछ माध्यम रहे हैं। हमारे पूर्वज आदिमानव, संकेतों, प्रतीकों के द्वारा संवाद करता था। कालान्तर में भावों और विचारों को प्रकट करने 'शब्द' माध्यम के रूप में आये। देखा जाए तो, मनुष्य के जन्म के साथ ही संचार का आरंभ हुआ है। 'मीडिया' या 'जनसंचार' शब्द भले ही नये हो, किन्तु भारत में जनसंचार की अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय पौराणिक साहित्य में इसके ढेरों उदारहरण मिलते हैं। पुराणों में नारदमुनि से लेकर रामायण में रावण की अशोकवाटिका में कैद सीता से मिलकर उसकी वेदना को व्यक्त करता हनुमान तक संचार के अनेक पहलुओं को दिखाया है। महाभारत में संभवतः दूरदर्शन जैसे ही एक माध्यम से संजय, कौरव के नेत्रहीन पिता धृतराष्ट्र को युद्ध के 'लाइव टेलीकास्ट' का वर्णन सुनाते हैं। वैसे ही, पौराणिक साहित्य में कंस को देवकी पुत्र द्वारा अपनी हत्या की संभावना का समाचार आकाशवाणी से ही मिलता है। प्राचीन भारत की ओर आते वक्त मेला, सभा, तीर्थाटन, लोकनाट्य, नृत्य, लोकगीत आदि के रूप में जनसंचार माध्यम उपस्थित थे, आधुनिक काल तक आते-आते पत्र-पत्रिकाओं के साथ नवीन प्रकार के जनसंचार का प्रचलन शुरु हुआ जो रेडियो, फिल्म और टेलीविजन से होकर आज की द्रुतगामी इन्टरनेट सेवा तक आ पहुँचा है।

सामाजिक एवं राजनीतिक जागरूगता लाने में प्रिंट मीडिया की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। लेकिन आज वे अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को गंभीरता से जानते हुए भी उपभोक्तावाद के चंकुल में फसकर कहीं मसालेदार, चटपटे या सनसनीखेज समाचारों का प्रसारण करने में मज़बूर है। वास्तव में मुद्रण कला ने मानव

सभ्यता के इतिहास तथा संचार के क्षेत्र में एक क्रांति ला दी थी, जिसके ज़रिए मनुष्य विश्व को समझने और दूसरों तक अपने विचारों को पहुंचाने की तकनीक हासिल की थी। लेकिन आज का पत्रकार नैतिक मूल्यों की ओर कम उन्मुख होता दिखाई देता है और यह मीडिया जगत में एक गंभीर समस्या के रूप में उभर रहा है।

पत्रकारिता के बाद संचार माध्यम के रूप में फिल्म की शुरूआत हुई। सिनेमा के साथ यह सुविधा है कि वह कलात्मक विधाओं को जीवंत माध्यम के रूप में प्रस्तुत कर सकता है। साथ ही यह जटिलताओं का सरलीकरण भी कर सकता है। सिनेमा की कमज़ोरी यह है कि ये समाज के सभी वर्गों के लिए एक ही प्रकार का संदेश संप्रेषित कर सकता है। समाज के अलग-अलग वर्गों की अलग-अलग आवश्यकताओं को पूरा करना इस माध्यम के लिए कठिन रहा। लेकिन आगे इलेक्ट्रॉनिकी के उत्कर्ष के चरण में रेडियो, टेलिविजन, इंटरनेट जैसे उच्च तकनीकी माध्यम के आगमन से इसका भी हल हो गया।

रेडियो तरंगों की नयी प्रौद्योगिकी ने बेतार के तार की तकनीक से 'रेडियो' को जन्म दिया जो, बाद में जनप्रसारण का लोकप्रिय माध्यम बन गया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ध्वनि की सफल यात्रा के समानान्तर चित्रों और ध्वनि को एकसाथ प्रसारित करने की प्रविधियाँ ढूँढ़ रही थीं और वहां टेलीविज़न की शुरुआत हुई। और तो और ख़बरों के संदर्भ में वस्तुनिष्ठता, सबसे पहले और सबसे आगे रहने की होड़ और सटीक विश्लेषण के साथ, एक तरह का प्रोफ़ेशनलिज़्म (पेशेवराना रुख) नज़र आने लगा।

आज के ज़माने में मीडिया का मतलब हो गया है वक्त की रफ्तार से निरंतर मुकाबला। यहाँ हर बीतता लम्हा एक चुनौती है। कुछ क्षणों की देरी से खबरें अप्रासंगिक और बासी हो जाती हैं। जितनी बड़ी चुनौती रफ्तार की है, उससे भी बड़ी चुनौती विश्वसनीयता बनाए रखने की है। जल्दबाजी में गलत खबर न चली जाए, इसका भी ध्यान रखने की जरूरत है।

धरती पर आधुनिक मानव के विकास के साथ कालांतर में कहानियों का भी जन्म हुआ है। जब मनुष्यों ने स्थायी रूप से रहना प्रारंभ कर दिया तब गाँव व परिवार बने। इसी स्थायित्व ने भाषा के विकास को बल दिया। वहीं से लेखन परंपरा की भी शुरुआत होने लगी। जैसे-जैसे मनुष्य कार्यशील होता गया, वैसे कहानियों के किस्से भी शुरू हो गये।

जहाँ तक हिंदी में कहानी लेखन के विकास की बात है, हमारे देश में कहानियों की लंबी और सम्पन्न परंपरा रही है। प्राचीनकाल से सदियों तक वीरों तथा राजाओं के शौर्य, प्रेम, न्याय, ज्ञान, वैराग्य, साहस, आदि की प्रचलित कथाएँ, जिनकी कहानियाँ घटनाओं पर आधारित हुआ करती थीं, वे कहानी के ही रूप हैं। वेदों, उपनिषदों तथा पुराणों में वर्णित 'पुरूरवा-उर्वशी', 'नहुष', 'ययाति', 'शकुन्तला' जैसे आख्यान कहानी के ही प्राचीन रूप हैं। खड़ीबोली में गद्य रचना सन् 1800 से प्रारंभ होती है और सन् 1900 तक आते आधुनिक कहानियों का जन्म होने लगा। इसकी शुरुआत प्रेमचंद से होती है। इस दौर में किशोरीलाल गोस्वामी, माधवराव सप्रे, बंगमहिला, आचार्य शुक्ल आदि कहानी के क्षेत्र में विराजमान थे। प्रेमचंद के पूर्व कहानियाँ आदर्शवादी उद्देश्य को

समाहित करती थी। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों की शुरुआत आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद से की और लेखन के अंतिम दौर में चरम यथार्थवाद की स्थापना की। इसके बाद प्रेमचंदोत्तर युग तक आते-आते कहानीकारों में जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल आदि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कहानीकार के रूप में आये।

प्रेमचंद-प्रसादोत्तर कहानी के पश्चात् हिंदी कहानी के परिदृश्य पर 'नई कहानी' की शुरुआत देखी जा सकती है। नई कहानी के लेखकों में धर्मवीर भारती, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, फणीश्वरनाथ रेणु, निर्मल वर्मा, शेखर जोशी, कृष्ण बलदेव वैध, भीष्म साहनी, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, रमेश बक्षी, रघुवीर सहाय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वतंत्रता के बाद का जो मोहभंग एवं निराशा नई कहानी के दौर में था, वह साठ के दशक में और गहरा हो गया। इन्हीं परिस्थिति के बीच साठोत्तरी कहानी या अकहानी आंदोलन का विकास हुआ। नयी कहानी एवं साठोत्तरी कहानी आंदोलन के बाद हिंदी कहानी में सचेतन (1964), सहज (1968), समांतर (1972), सक्रिय (1979) एवं जनवादी कहानी आंदोलन आये। ये आंदोलन अपने समय की पहचान देते हुए विकसित हुए।

आज हिंदी कहानी, आंदोलनों से मुक्त होकर सृजनात्मकता के नए उन्मेष को लेकर चली है। इसमें समकालीन जीवन, उसकी समस्याओं और उसकी प्रासंगिक सार्थकता की तलाश देखी जा सकती है। समकालीन हिंदी कहानी का यह दौर यहीं से शुरू होता है। इसने समय के साथ समाज की हर समस्या को कहानी का विषय बनाया।

इसमें आम-आदमी की जीवन व्यथा, संबंधों का विद्रोह, स्वतंत्रता की माँग, व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष आदि शामिल है। इसके साथ कई प्रवृत्तियाँ जोड़ने लगी जिसने विमर्श के रूप धारण करना शुरू किया। उसमें स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, सांप्रदायिकता, आतंकवाद, भूमण्डलीकरण और बाज़ारवाद, पारिस्थितिक विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि शामिल है। रामदरश मिश्र, कुसुम अंसल, चित्रा मुद्गल, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, कृष्णा सोबती, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, सूरजपाल चौहान, स्वयं प्रकाश, मंजुल भगत, नासिरा शर्मा, विष्णु प्रभाकर, अरुण प्रकाश, उदयप्रकाश, राजेश जोशी, संजय, पंकज बिष्ट, संजीव आदि इसमें प्रमुख है।

आधुनिक काल तक आते-आते साहित्य व मीडिया मनुष्य जीवन से पूरी तरह जुड़ गये हैं। पत्र-पत्रिकाओं ने साहित्य-सृष्टि को पाठक वर्ग तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया हैं। कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, एकांकी तथा नाटक तक सभी साहित्यिक विधाएँ सबसे पहले पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से पाठक वर्ग तक पहूँची हैं।

'हरिश्चन्द्र मैगजीन', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'कविवचन सुधा', 'बालबोधिनी' आदि पत्रिकाओं ने साहित्य के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। बहुत से साहित्यकार हैं जो अपनी पत्रकारिता के माध्यम से साहित्य-सेवा करते आये हैं। जैसे सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, उदय प्रकाश, सुदीप, मंगलेश डबराल, धीरेन्द्र अस्थाना, अमरकांत, मार्कण्डेय, रमेश बक्षी, मधुकर सिंह आदि ने साहित्य को पत्रकारिता के साथ आगे बढ़ाया। इसी तरह 'मनोरम', 'चाँद', 'सुधा', 'मर्यादा', 'नई धारा', 'आलोचना', 'विश्वभारती पत्रिका',

'साहित्यकार', 'कहानी', 'ज्ञानोदय', 'राष्ट्रवाणी', 'आजकल', 'वसुधा', 'जया पथ', 'नई कहानियाँ' आदि पत्रिकाओं ने साहित्यिक क्षेत्र की शोभा बढ़ायी।

पत्र-पत्रिकाओं की तरह आकाशवाणी का भी साहित्य संप्रेषण में अद्वितीय योगदान रहा है। रंगनाटक, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं से लेकर काव्य और यात्रा-वृत्तान्त के रूपान्तर रेडियो द्वारा प्रसारित होती है। इसी तरह अन्य विधाएँ भी रेडियो के माध्यम से पुनर्जीवित हुए हैं, जैसे कविता की रेडियो प्रस्तुति हो या उपन्यास की, श्रव्य उपकरणों के माध्यम से इसकी सफल प्रस्तुति हुई है। गिरिजा कुमार माथुर की 'शब्द जो रोशनी हूँ', सूर्यभानु गुप्त की 'निठल्लों की बस्ती में सूर्योदय' आदि रेडियो कविता-संग्रह है जो रेडियो द्वारा प्रसारित है।

दूरदर्शन के आगमन ने मीडिया के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन स्थापित किया। टेलिविजन में धारावाहिक निर्माण के लिए बड़ी संख्या में साहित्यिक कृतियों को आधार बनाया गया था। प्रेमचन्द की 'निर्मला', शरत बाबू की 'श्रीकान्त', देवकीनन्दन खत्री की 'चन्द्रकान्ता' आदि धारावाहिक सीधे साहित्यिक कृतियों को आधार लेकर दूरदर्शन से प्रसारित हैं।

हिंदी कथा साहित्य पर आधारित टेलीनाटक हैं, 'आधी रात के बाद' (शंकर शेष), 'पतझर' (शैलेन्द्र), 'ध्रुवस्वामिनी' (प्रसाद), 'लांछन' (प्रेमचंद), 'ज़रा सी भूल' (सुभाषिनी कपूर) आदि। उसी प्रकार हिन्दी उपन्यासों पर आधारित हिंदी धारावाहिक हैं - अमृतलाल नागर की 'बूँद और समुद्र', मैत्रेयी पुष्पा की 'चाक', अज्ञेय की 'शेखर एक

जीवनी', चन्द्रकांता की 'कथा सतीसर', लाला श्रीनिवास दास की 'परीक्षा गुरू', प्रेमचचंद की 'निर्मला', भीष्म साहनी की 'तमस' आदि।

सिनेमा की ओर देखे तो, सिनेमा ने अपने आरंभिक चरण में साहित्य से ही प्राण-तत्व लिया था। जैसे भक्त प्रहलाद, शिव महिमा, विष्णु अवतार, रामायण, उत्तर रामायण, कालिया मर्दन, संत तुकाराम, संत नामदेव आदि। अब दर्शकों की रुचि पौराणिक घटनाओं से हटकर सामाजिक समस्याओं पर आकर रहे। 'गोदान', 'गबन', 'चित्रलेखा', 'संघर्ष', 'साहब बीबी और गुलाम', 'तीसरी कसम', 'गाइड' आदि साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्में हैं। पूरे अध्याय में इस प्रकार प्रिंट मीडिया से लेकर इलेक्ट्रोनिक मीडिया तक की साहित्यिक अभिव्यक्ति को दिखाया है।

पिछले 15 वर्षों में मीडिया के स्वरूप में बहुत तेज़ बदलाव आया है। सूचना क्रांति एवं तकनीकी विस्तार से चलती मीडिया की पहूँच व्यापक हुई। इसके साथ भूमंडलीकरण, उदारीकरण एवं बाज़ारीकरण भी मीडिया को प्रभावित करने लगा, जिसके फलस्वरूप नए-नए चैनल खुले, मीडिया की नीति में बदलाव आ गया। मीडिया के इस बदले रूख से उन पत्रकारों की चिंता भी बढ़ती जा रही है, जो यह मानते हैं कि मीडिया के मूल में सामाजिक सरोकार होना चाहिए। मीडिया की पहली समस्या वहीं से शुरू होती है। यानि कि 'अभिव्यक्ति की समस्या'। रिपोर्टर हाथ-पाव मारकर कुछ एक्सक्लूसिव लाते भी तो आउटपुट वाले बिना आगे-पीछे देखे उसे फेंक देते हैं, और कहेंगे कि 'कुछ मसाला हो तो लाओ वर्ना नहीं'। चैनलवालों के अब यही मक्सद रहे हैं कि उन्हें बस लोगों को ख़बरों से लुभाना है। इसके लिए मीडिया को सूचना नहीं बल्कि मसालेदार

न्यूज़ों की खोज हैं। 'न्यूज़ की खोज' ने आपसी प्रतिस्पर्धा को बढ़ा दी है, जो नौकरी में व्यक्तिगत प्रतियोगिता की ओर ले जाती है अब 'वैयक्तिक संघर्ष' मीडिया जगत की समस्याओं में आम बात हो गयी है। वैसे ही 'ख़बरों की विश्वसनीयता' भी मीडिया जगत की एक समस्या के रूप में उभर आ रही है। एक्सक्लूसिव के पीछे भागते मीडिया में 'टीआरपी रेटिंग का दबाव' रिपोर्टर के सामने समस्या के रूप में हमेशा से रही है। विविधता और बहुलता चैनलों के बीच प्रतियोगिता बढ़ाने का कारण बन गया। आगे आने की होड़ 'मीडिया के बीच प्रतियोगिता' की समस्या को व्यक्त करती है। एक अन्य समस्या है 'मीडियावालों पर प्रेशर'। मुनाफे के लिए मीडियाकर्मियों पर जो दबाव डालते हैं और एक-दूसरे के आगे आने की होड़ और 'एक्सक्लूसिव' व 'ब्रेकिंग न्यूज़' मीडियावालों की प्रेशर बढ़ाता रहता है। न्यूज़ के पीछे ज़िदगी लगाने पर परिवार और रिश्तों को समय न दे पाना 'पारिवारिक समस्या' की ओर इशारा करता है। और तो और 'आदर्श और यथार्थ के बीच का द्वन्द', 'स्त्री का चित्रण', 'नैतिक मूल्यों की छूट' आदि मीडिया जगत की समस्या के रूप में सामने आये हैं।

राणा यशवंत की 'ब्रेकिंग न्यूज़', मुकेश कुमार की 'टारगेट', विनोद कापड़ी की 'कितने मरे', पंकज श्रीवास्तव की 'दिव्या मेरी जान', विजय विद्रोही की 'प्रेत पत्रकारिता', राकेश कायस्थ की 'डर लगे अपनी उमरिया से', रवि पाराशर की 'अनुभव की अभिलाषा' आदि चालीस से ऊपर कहानियाँ इसमें शामिल है।

वैश्वीकरण के दौर से मीडिया के चरित्र में काफी बदलाव आया। मूल्यों के टकराव जैसे-जैसे बढ़ता गया, मीडिया कर्मी के दबाव भी उसके साथ बढ़ता गया। मुनाफे

की भूख और बाजार की लालच ने जिस नए वातावरण का सृजन किया उससे संपादक से लेकर कैमरामैन, रिपोर्टर, प्रसारण तकनीशियन तक के सारे कर्मी दुविधा में पड़ गये।

संक्षेप में कहा जाए तो मीडिया जगत की समस्याओं का मूल मीडिया कार्पोरेट या मीडिया मालिक है। वे मुनाफे केलिए मीडियाकर्मी को प्रेशर करते रहते हैं। मुनाफा कमाना है तो रेटिंग चाहिए। रेटिंग केलिए कुछ भी दिखाने में मीडियाकर्मी बाध्य हो जाता है। दिन भर क्रिकेट दिखाते हैं। क्राइम दिखाते हैं। सेंसेशनल खबरें दिखाते हैं। कोई एक्सीडेंट से मर रहा हो तो उसके मुँह में माइक डालकर पूछते हैं कि आपको कैसा लग रहा है? और न जाने क्या क्या। पहले तो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की ब्रेकिंग खबरें सोशल मीडिया में ट्रेंड बनती थीं। मगर अब सोशल मीडिया पर वायरल हुई खबरें न्यूज़ रूम को प्रभावित करती हैं। हर पत्रकार अब ताजा घटनाक्रमों की जानकारी केलिए फेसबुक, ट्विट्टर आदि पर ही नजरें गडाए रहते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

कहानी संग्रह :

1. अनन्त कुमार सिंह : ब्रेकिंग न्यूज़ (कहानी-संग्रह)
भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110003 ISBN 978-93-263-5002-0
प्रथम संस्करण 2012

2. राजेन्द्र यादव। : वक़्त है एक ब्रेक का (ख़बरिया चैनलों की कहानियाँ)
अजीत अंजुम। राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
रवीन्द्र त्रिपाठी। दरियागंज नई दिल्ली-110002 ISBN 978-81-267-1347-9
प्रथम संस्करण 2007

3. राजेन्द्र यादव : हंस - जनवरी, 2007(पत्रिका)
अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002

4. सं. हरिनारायण : कथादेश - अगस्त, 2009
सहयात्रा प्रकाशन प्रा.लि., सी-52/जेड-3 दिलशाद गार्डन,
दिल्ली - 110095

सहायक ग्रंथ :

1. डॉ.अकेलाभाड़ रेडियो, साहित्य और पत्रकारिता
समय प्रकाशन, आई.1/16, शांतिमोहन हाउस,
अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-110002
ISBN 978-81-7970-149-2
प्रथम संस्करण 2009

2. अरुण कमल — अपनी केवल धार (कविता संग्रह) वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002 प्रथम संस्करण 1980

3. आश करण अटल — आज की कविता राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2013

4. उदय प्रकाश — रात में हारमोनियम वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002 प्रथम संस्करण 1998

5. डॉ कीर्तिकुमार जादव, डॉ विनोदचंद्र चौधरी — जन संचार माध्यम में हिन्दी की स्थिति और दिशा सार्थ पब्लिकेशन 502, वीरानी चेम्बर, आणंद-388001 ISBN 978- 93-81761-43-4 प्रथम आवृत्ति 2012

6. जयप्रकाश त्रिपाठी — मीडिया हूं मैं अमन प्रकाशन 104A/80C रामबाग, कानपुर-208012 ISBN 978-93-83682-34-8 प्रथम संस्करण 2014

7. तेज सिंह — उत्तरशती की हिंदी कहानी किताब घर, 24/4855, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 ISBN 81-7016-772-8 प्रथम संस्करण 2006

8. दिलीप मंडल — कॉरपोरेट मीडिया : दलाल स्ट्रीट राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली-110002

ISBN 978-81-267-2111-5
पहला संस्करण 2011

9. डॉ.देवव्रत सिंह — भारतीय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया
प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002 ISBN 81-7315-642-5
प्रथम संस्करण 2007

10. देवीशंकर अवस्थी — नयी कहानी सन्दर्भ और प्रकृति
राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली-110002
ISBN978-81-267-1521-3
प्रथम संस्करण 1973, पुनर्मुद्रित 2013

11. नन्दकिशोर नवल — हिन्दी कविता अभी, बिलकुल अभी
राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002 प्रथम संस्करण 2014

12. नंद भारद्वाज — संस्कृति, जनसंचार और बाजार
सामयिक प्रकाशन, 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002
ISBN 81-7138-119-7
प्रथम संस्करण 2007

13. के.पी.नारायणन् — सम्पादन कला
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल,
तृतीय संस्करण 1989

14. निर्मल वर्मा — रात का रिपोर्टर
भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशित वर्ष 2010

15. पुण्य प्रसून वाजपेयी — ब्रेकिंग न्यूज
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002 ISBN 81-8143-530-3 प्रथम संस्करण 2006

16. प्रकाश मनु : यह जो दिल्ली है
प्रभात प्रकाशन

17. बलबीर कुन्दरा — जनसंचार बदलते परिप्रेक्ष्य में
तक्षशिला प्रकाशन, 23/4761, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002 ISBN 978-81-7965-166-7 प्रथम संस्करण 2009

18. डॉ मुकेश कुमार — टीआरपी टीवी न्यूज़ और बाज़ार
वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 ISBN 978-93-5072-868-0 प्रथम संस्करण 2015

19. मधुकर लेले — भारत में जनसंचार और प्रसारण मीडिया
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली -110 002 ISBN 978-81-8361-409-2 पहला संस्करण 2011 पहली आवृत्ति 2014

20. मधुरेश
हिन्दी कहानी का विकास
सुमित प्रकाशन, यू.एफ.42 अलोपशंकरी अपार्टमेंट, 107/177,अलोपीबाग, इलाहाबाद; षष्ठ संस्करण 2011

21. डॉ.योगेन्द्र प्रताप सिंह
मीडिया और साहित्य
साहित्य रत्नालय, गिलिस बाजार, कानपुर 208001 ISBN 81-8378-055-5 संस्करण 2010

22. रमेश प्रजापति
पूरा हँसता चेहरा
सेतु प्रकाशन, उत्तरप्रदेश-201301

23. डॉ.राजकुमारी रानी
पत्रकारिता : विविध विधाएँ
जय भारती प्रकाशन, 267 बी, माया प्रेस रोड, इलाहाबाद 211003 ISBN 81-85957-21-5 द्वितीय संस्करण 2010

24. राधेश्याम शर्मा
जनसंचार
हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला तृतीय संस्करण 1999

25. डॉ.राम लखन मीणा
मीडिया विमर्श आधुनिक संदर्भ
कल्पना प्रकाशन, बी-1770, जहाँगीर पुरी, दिल्ली-110033 ISBN 978-81-88790-72-2 प्रथम संस्करण 2012

26. रविंद्र जाधव
केशव मोरे
मीडिया और हिंदी बदलती प्रवृत्तियाँ
वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी

दिल्ली- 110002 ISBN 978-93-5072-850-5 प्रथम संस्करण 2016

27. प्रो. रवीन्द्रनाथ मिश्र — मीडिया और लोकतन्त्र
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002 प्रथम संस्करण 2013 ISBN 978-93-5072-412-5

28. विपुल कुमार — साहित्य और सिनेमा अंतःसंबंध और रूपान्तरण
मनीष प्रकाशन, दिल्ली-94 प्रथम संस्करण 2014

29. विष्णु राजगढ़िया — जनसंचार सिद्धान्त और अनुप्रयोग
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली -110 002 ISBN 978-81-8361-257-9 प्रथम संस्करण 2008 आवृत्ति 2011

30. डॉ वेदप्रकाश अमिताभ — हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्य
कुंजबिहारी पचौरी, जवाहर पुस्तकालय, सदर बाजार, मथुरा (उ.प्र.)-281001 ISBN 81-8111-022-6 संस्करण : सन् 2005

31. डॉ श्यामबाबू शर्मा — भूमण्डलीकरण और समकालीन हिंदी कविता
विकास प्रकाशन, कानपुर।
प्रथम संस्करण 2014

32. डॉ श्याम कश्यप
डॉ मुकेश कुमार — टीवी एंकरिंग चैनलों के चेहरे
राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1-बी, नेताजी

सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली-110002
ISBN 978-81-267-2869-5 प्रथम संस्करण 2015

33. डॉ षीबा मनोज — पत्रकारिता का संसार और हिन्दी उपन्यास
गोविन्द पचौरी, जवाहर पुस्तकालय, सदर बाजार, मथुरा (उ.प्र.)-281001 ISBN 978-81-8111-183-8 संस्करण : सन् 2011

34. सर्वेश कुमार मौर्य
आनंद पांडेय — जनतन्त्र के पक्ष में 11,सोशल मीडिया की राजनीति स्वराज प्रकाशन, 4648/1, 21, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
ISBN 978-93-88891-10-3
प्रथम संस्करण 2019

35. सुधीश पचौरी — साइबर-स्पेस और मीडिया
प्रवीण प्रकाशन1/1079 ई, महरौली, नई दिल्ली -110030 ISBN 81-7783-050-3
संस्करण 2003

36. सुमित मोहन — मीडिया लेखन
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002 ISBN 81-8143-331-9
संस्करण 2005, 2007 आवृत्ति 2013

37. हंसराज 'सुमन' — स्टिंग ऑपरेशन
श्री नटराज प्रकाशन, ए-507/12, करतार नगर, बाबा श्यामगिरी मार्ग, साउथ गामड़ी एक्सटेंशन, दिल्ली-110053 ISBN 978-81-89997-05-2
प्रथम संस्करण 2008

38. डॉ.हरिमोहन — रेडियो और दूर-दर्शन पत्रकारिता
तक्षशिला प्रकाशन, 23/4761, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002 ISBN 81-7965-055-3 प्रथम संस्करण 1997 द्वितीय संस्करण 2004

39. हर्षदेव — उत्तर आधुनिक मीडिया तकनीक
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002 प्रथम संस्करण 2001
द्वितीय संस्करण 2004

मलयालम ग्रंथ :

1. A GROUP OF AUTHORS : MADHYAMANGALUM MALAYALA SAHITHYAVUM
State Institute Of Languages, Kerala, Thiruvananthapuram-3
ISBN 978-93-85313-38-7 Third Edition 2015

पत्र-पत्रिकाएँ :

1. आजकल : फरवरी 2008
2. प्रतिमान : जुलाई-दिसम्बर, 2015
3 दस्तावेज़ : अप्रैल-जून 2016
4. साहित्य अमृत : अगस्त 2015
5. संग्रथन : सितंबर 2014
6. हिन्दी अनुशीलन : जुलाई-दिसम्बर 2017

वेबसाइट :

1. https://hi.wikipedia.org/wiki/कहानी
2. https://sjran.org/wp-content/uploads/2021/05/Chapter-7-2.pdf